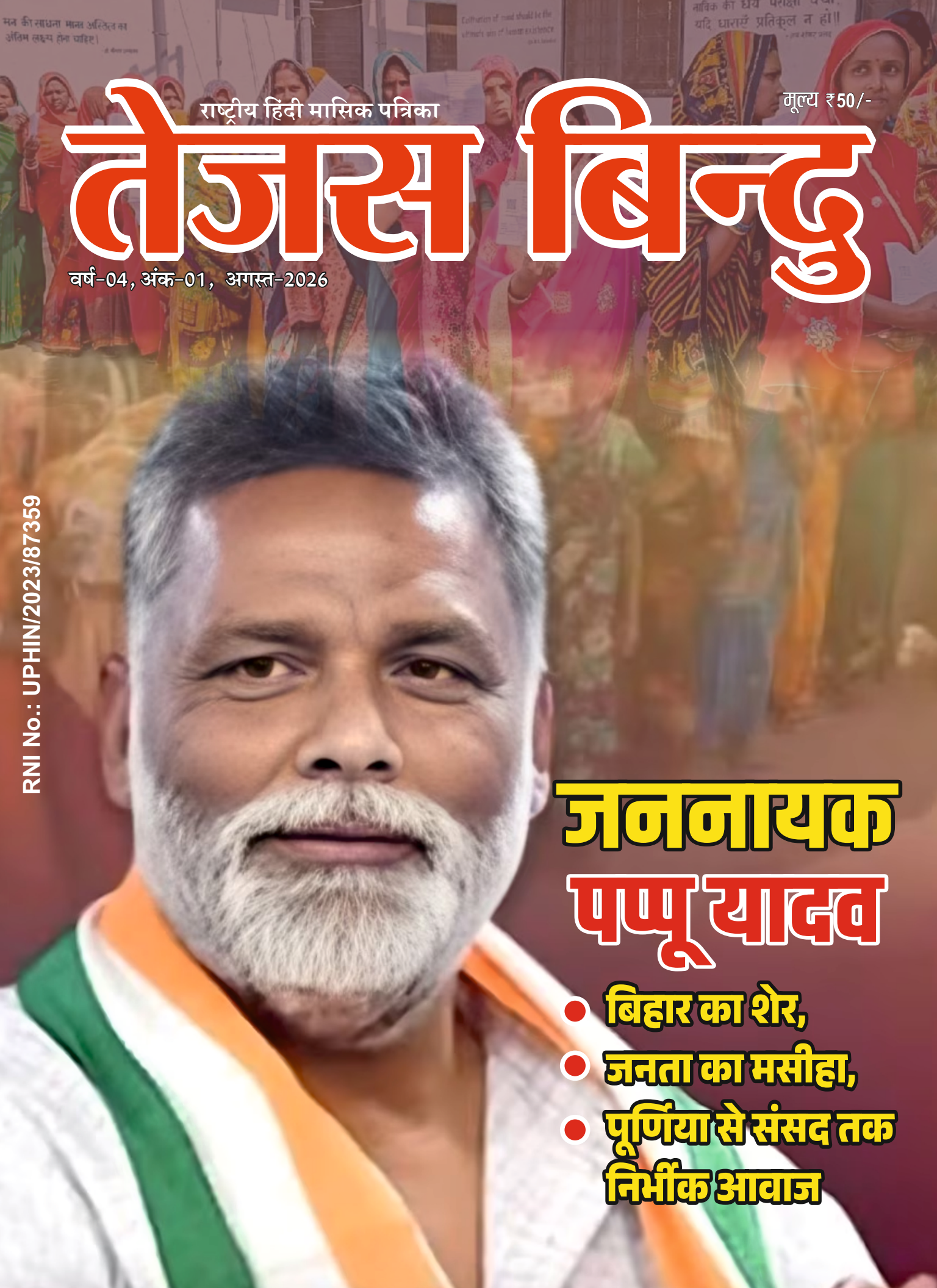
राष्ट्रीय हिंदी मासिक पत्रिका

मूल्य ₹50/-

तेजस बिन्दु

वर्ष-04, अंक-01, अगस्त-2026

RNI No.: UPHIN/2023/87359



जननायक पप्पू यादव

- बिहार का शेर,
- जनता का मसीहा,
- पूर्णिया से संसद तक निर्भीक आवाज

“देश की शान तिरंगा है,
देश की पहचान तिरंगा है,
हर भारतीय के दिल की
जान तिरंगा है।”

मेरा भारत महान



15 अगस्त
स्वतंत्रता दिवस
की हार्दिक शुभकामनाएं

आइए, हम सब मिलकर
देश की एकता, अखंडता और
समृद्धि के लिए संकल्प लें।

आजादी का
गौरव, देश की
तरक्की

डॉ तेजस यादव

संस्थापक / राष्ट्रीय अध्यक्ष

विश्व पिछड़ा परिषद

RNI No.: UPHIN/2023/87359

तेजस बिन्दु

हिन्दी मासिक पत्रिका मूल्य : ₹50/-

वर्ष:04, अंक-01, अगस्त-2026

संपादक
आरती यादव

प्रधान संपादक
यदुवंशी ननकू यादव

सह संपादक
प्रीत कुमार यादव/बिहार ब्यूरो
(R.P. YADAV)

प्रबन्ध संपादक
दुर्गावती देवी

विधिक सलाहकार
मानती यादव

संवाददाता
साधना देवी, गीता देवी

मैगजीन लेआउट
शुभम यादव
8881544447

तेजस बिन्दु के लिए स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक, आरती यादव द्वारा इशिता प्रिन्टर्स, 168/8, हेवेट रोड़, हुसैनगंज चौराहा, लखनऊ (उ०प्र०)–226001 से मुद्रित एवं 251 ग्रा० लटेरा पो०–धोरहरा डुमरियागंज, सिद्धार्थनगर (उ०प्र०)–272189 से प्रकाशित।

रजिस्टर्ड कार्यालय
251 ग्रा० लटेरा पो०-धोरहरा डुमरियागंज,
सिद्धार्थनगर (उ०प्र०)-272189

Mob. 9838595489
E-mail:tejasips89@gmail.com

पत्रिका से संबंधित समस्त वाद विवादों का न्याय क्षेत्र सिद्धार्थनगर, उ०प्र० न्यायालय होगा।

सभी पद अवैतनिक है।

इस अंक में



17 जननायक पप्पू यादव



06 अपराध की बदलती तस्वीर...



08 आरटीआई से खुलते भ्रष्टाचार के राज...



28 हाशिए की आवाज़ या सत्ता की रणनीति?...



34 शक्कर के चक्कर में रूठा आम आदमी...



आर.पी. यादव
सह संपादक

सच की तलाश में पत्रकारिता

बदलते दौर में भरोसे की सबसे बड़ी परीक्षा

समय बदल रहा है। खबरों की दुनिया भी बदल रही है। कभी अखबार की सुबह का इंतजार होता था, आज मोबाइल की स्क्रीन पर हर पल खबर दस्तक देती है। एक तस्वीर, एक वीडियो या कुछ पंक्तियां कुछ ही मिनटों में हजारों लोगों तक पहुंच जाती हैं। सूचना की यह रफ्तार लोकतंत्र के लिए ताकत है, लेकिन जब रफ्तार सत्य से आगे निकल जाए तो वही सूचना भ्रम और अफवाह का हथियार भी बन सकती है। यहीं से पत्रकारिता की असली परीक्षा शुरू होती है। पत्रकारिता केवल घटनाओं को लिख देने का नाम नहीं है। यह सवाल पूछने का साहस है। यह सत्ता से जवाब मांगने की जिम्मेदारी है। यह उस व्यक्ति की आवाज बनने का प्रयास है जिसकी आवाज व्यवस्था के शोर में दब जाती है। और सबसे बढ़कर, यह समाज के सामने सच को उसके पूरे संदर्भ के साथ रखने की जिम्मेदारी है। तेजस बिंदु का मानना है कि पत्रकारिता का मूल्य उसकी सनसनी में नहीं, उसकी विश्वसनीयता में है। पाठक को सबसे पहले खबर चाहिए, लेकिन उससे भी ज्यादा उसे सही खबर चाहिए। इसलिए खबर कितनी तेजी से आई, यह महत्वपूर्ण जरूर है, मगर खबर कितनी प्रमाणिक है, यह उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। बिना पुष्टि के किसी आरोप को खबर बना देना, अफवाह को तथ्य की तरह प्रस्तुत करना या किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को अपुष्ट सूचना से नुकसान पहुंचाना पत्रकारिता की विश्वसनीयता को कमजोर करता है। इसलिए एक अच्छे पत्रकार की पहचान केवल इस बात से नहीं होती कि वह कितनी खबरें करता है, बल्कि इससे होती है कि वह खबर के पीछे कितनी मेहनत, पड़ताल और जिम्मेदारी रखता है। आज पाठक की भूमिका भी बदल गई है। वह केवल खबर पढ़ने वाला व्यक्ति नहीं रहा, वह खबर साझा करता है, प्रतिक्रिया देता है और अपनी राय बनाता है। इसलिए पाठक को भी हर वायरल सूचना पर तुरंत विश्वास करने के बजाय स्रोत, तथ्य और संदर्भ को समझने की आदत विकसित करनी होगी। सूचना के इस महासागर में सत्य की पहचान ही सबसे बड़ी पत्रकारिता है।

तेजस बिंदु इसी विश्वास के साथ अपने पाठकों के सामने है कि पत्रकारिता का भविष्य तकनीक से जरूर बदलेगा, माध्यम बदलेंगे, खबर प्रस्तुत करने के तरीके बदलेंगे, लेकिन पत्रकारिता के मूल मूल्य नहीं बदलने चाहिए सत्य, निष्पक्षता, जनहित, संवेदनशीलता और जवाबदेही। हमारा प्रयास रहेगा कि खबर केवल खबर न रहे, बल्कि समाज के सवालों की आवाज बने, मुद्दे केवल चर्चा तक सीमित न रहें, बल्कि समाधान की दिशा में संवाद पैदा करें; और पत्रकारिता केवल सत्ता के गलियारों तक सीमित न रहकर गांव, गरीब, किसान, मजदूर, युवा, महिला और आम नागरिक की जिंदगी से जुड़ी रहे। क्योंकि अंततः मीडिया की असली ताकत उसके पास मौजूद कैमरे, माइक्रोफोन या डिजिटल प्लेटफॉर्म में नहीं होती। उसकी असली ताकत जनता का भरोसा होती है। और यह भरोसा एक बार टूट जाए तो उसे किसी तकनीक से वापस नहीं पाया जा सकता।

वेश्यावृत्ति के कथित रैकेट पर अदालत सख्त

मथुरापुर मामले में जज की गंभीर टिप्पणी, विशेष दल गठित कर कार्रवाई का निर्देश

T.B. तेजसबिंदु न्यूज नेटवर्क



बलिया थाना क्षेत्र के मथुरापुर गांव में कथित रूप से संचालित वेश्यावृत्ति के धंधे को लेकर न्यायालय ने गंभीर रुख अपनाया है। जिला एवं सत्र न्यायाधीश सह विशेष न्यायाधीश, एमपी-एमएलए कोर्ट ने मामले की सुनवाई के दौरान स्थानीय प्रशासन और पुलिस की कार्यप्रणाली पर सवाल उठाते हुए राज्य सरकार से प्रभावी हस्तक्षेप की आवश्यकता जताई है।

न्यायालय ने टिप्पणी की कि नागरिकों के जीवन के अधिकार की रक्षा करना राज्य का दायित्व है और सरकार को अपने दायित्व से पल्ला झाड़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती। अदालत के अनुसार, स्थानीय प्रशासन—बलिया पुलिस से लेकर अंचल और जिला प्रशासन तक—मथुरापुर में कथित रूप से चल रहे इस धंधे को रोकने में अपेक्षित प्रभावशीलता नहीं दिखा सका है।

मुख्य सचिव को विशेष दल बनाने का निर्देश

मामले में न्यायाधीश रजेश कुमार सिंह ने बिहार सरकार के मुख्य सचिव को व्यक्तिगत रूप से मामले पर ध्यान देने का निर्देश दिया। न्यायालय ने कहा कि मथुरापुर गांव के वार्ड संख्या छह में कथित वेश्यावृत्ति के रैकेट को समाप्त करने के लिए एक उपयुक्त विशेष दल का गठन किया जाए तथा दोषियों के विरुद्ध कानून के अनुरूप कार्रवाई सुनिश्चित की जाए। न्यायालय के आदेश की प्रति मुख्य सचिव के सचिव के साथ-साथ जिला प्रशासन, विशेष पुलिस पदाधिकारी तथा बलिया थाना के थानाध्यक्ष को भेजे जाने का निर्देश दिया गया है, ताकि मामले में तत्काल आवश्यक कार्रवाई हो सके।

केस संख्या 297/2024 बना सुनवाई का केंद्र

यह मामला बलिया थाना कांड संख्या 297/2024 से संबंधित है। सुनवाई के दौरान अभियोजन पक्ष की ओर से प्रस्तुत गवाहों के बयान और जांच की प्रक्रिया पर भी न्यायालय ने विचार किया। अदालत के अनुसार प्रारंभिक जांच पूरी होने के बाद अभियुक्तों के बयान दर्ज करने की प्रक्रिया के लिए 28 अगस्त की तारीख निर्धारित की गई है।न्यायालय ने गवाहों के बयान दर्ज किए जाने के संबंध में भी महत्वपूर्ण टिप्पणी की। अदालत ने स्पष्ट किया कि यदि कोई गवाह न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर अपना बयान देना चाहता है, तो उसके बयान को विधि के अनुसार दर्ज करना न्यायालय का दायित्व है।

प्रशासन की भूमिका पर उठे सवाल

मथुरापुर प्रकरण में अदालत की सख्त टिप्पणी ने स्थानीय प्रशासन और पुलिस की भूमिका को लेकर बहस तेज कर दी है। न्यायालय की टिप्पणी का मूल सवाल यही है कि यदि किसी क्षेत्र में लंबे समय से अवैध गतिविधि की शिकायत या जानकारी सामने आती है, तो उसे रोकने की जिम्मेदारी किसकी है और कार्रवाई में देरी क्यों होती है।यह मामला केवल एक कथित अवैध धंधे तक सीमित नहीं है, बल्कि कानून-व्यवस्था, प्रशासनिक जवाबदेही और नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा से भी जुड़ा है। अब नजर इस बात पर है कि न्यायालय के निर्देश के बाद जिला प्रशासन और पुलिस इस मामले में किस स्तर की कार्रवाई करते हैं।

फिलहाल अदालत की सख्त टिप्पणी के बाद मथुरापुर मामले ने प्रशासनिक तंत्र की जवाबदेही को केंद्र में ला दिया है।

अपराध की बदलती तस्वीर

पुलिसिंग की चुनौती और जनता की उम्मीदें



TB आरपी यादव
सह संपादक

बिहार लंबे समय से राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक बदलावों का केंद्र रहा है। इसी बदलाव के बीच कानून-व्यवस्था का प्रश्न भी लगातार सार्वजनिक चर्चा का विषय बना रहता है। अपराध की घटनाएँ जब सुर्खियाँ बनती हैं, तो उनके साथ पुलिस की कार्यशैली, जांच की गति और न्यायिक प्रक्रिया पर भी सवाल उठते हैं। दूसरी ओर, पुलिस का पक्ष यह होता है कि अपराध के स्वरूप में बदलाव, तकनीकी चुनौतियाँ और सीमित संसाधनों के बीच काम करना आसान नहीं है।

अपराध का बदलता स्वरूप

बिहार में पारंपरिक अपराधों के साथ-साथ साइबर अपराध, ऑनलाइन ठगी, संगठित आर्थिक अपराध और डिजिटल माध्यमों से होने वाले अपराध भी बढ़ती चुनौती बनकर उभरे हैं। इसके अलावा हत्या, लूट, रंगदारी और भूमि विवाद जैसे मामले भी समय-समय पर सार्वजनिक बहस का हिस्सा बनते रहे हैं। हर घटना केवल एक आपराधिक मामला नहीं



होती, बल्कि वह आम नागरिक के मन में सुरक्षा की भावना को भी प्रभावित करती है।

पुलिसिंग की नई चुनौतियाँ

आधुनिक पुलिसिंग केवल गश्त तक सीमित नहीं रह गई है। डिजिटल साक्ष्य, सीसीटीवी, फोरेंसिक विज्ञान, साइबर जांच और डेटा विश्लेषण अब अपराध की जांच का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इसके साथ ही पुलिस पर निष्पक्ष कार्रवाई, समयबद्ध जांच और संवेदनशील व्यवहार की भी अपेक्षा रहती है।

विशेषज्ञ मानते हैं कि बेहतर पुलिसिंग के लिए तकनीक, प्रशिक्षण, पर्याप्त संसाधन और जनसहयोग—चारों की समान आवश्यकता है।

जनता का विश्वास क्यों महत्वपूर्ण है?

कानून-व्यवस्था की सफलता केवल अपराधियों की गिरफ्तारी से नहीं मापी जाती, बल्कि इस बात से भी कि आम नागरिक पुलिस पर कितना भरोसा करता है। यदि पीड़ित बिना भय के शिकायत दर्ज करा सके, गवाह सुरक्षित महसूस करें और जांच निष्पक्ष हो, तो न्याय व्यवस्था अधिक प्रभावी बनती है।

अपराध नियंत्रण में समाज की भूमिका

अपराध रोकना केवल पुलिस की जिम्मेदारी नहीं है। स्थानीय समुदाय, पंचायत, स्कूल, परिवार और नागरिक समाज भी जागरूकता, सूचना और सहयोग के माध्यम से महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। कई मामलों में समय पर दी गई सूचना ने अपराध रोकने या अपराधियों तक पहुँचने में सहायता की है।

सुधार की दिशा- विशेषज्ञों के अनुसार निम्न बिंदुओं पर लगातार काम करने की आवश्यकता है



पुलिस बल का आधुनिकीकरण और तकनीकी प्रशिक्षण।

लंबित मामलों की समयबद्ध जांच-साइबर अपराध से निपटने के लिए विशेष इकाइयों को मजबूत करना।थानों में पारदर्शिता और जवाबदेही बढ़ाना।

फोरेंसिक और डिजिटल जांच क्षमता का विस्तार-सामुदायिक पुलिसिंग और नागरिक सहभागिता को प्रोत्साहन। सारांशबिहार में कानून-व्यवस्था पर चर्चा केवल अपराध के आँकड़ों तक सीमित नहीं होनी चाहिए। उतना ही महत्वपूर्ण यह भी है कि जांच कितनी निष्पक्ष है, पीड़ितों को कितनी जल्दी न्याय मिलता है और नागरिक खुद को कितना सुरक्षित महसूस करते हैं। मजबूत पुलिसिंग, पारदर्शी जांच और सक्रिय नागरिक भागीदारी ये तीनों मिलकर ही सुरक्षित और विश्वासपूर्ण समाज की नींव रख सकते हैं। "लोकतंत्र में कानून का राज तभी मजबूत होता है, जब अपराधी कानून से डरें और आम नागरिक कानून पर भरोसा करें।"

आरटीआई से खुलते भ्रष्टाचार के राज

फाइलों में कैद सच जब जनता के हाथ आता है, तब व्यवस्था से उठते हैं बड़े सवाल

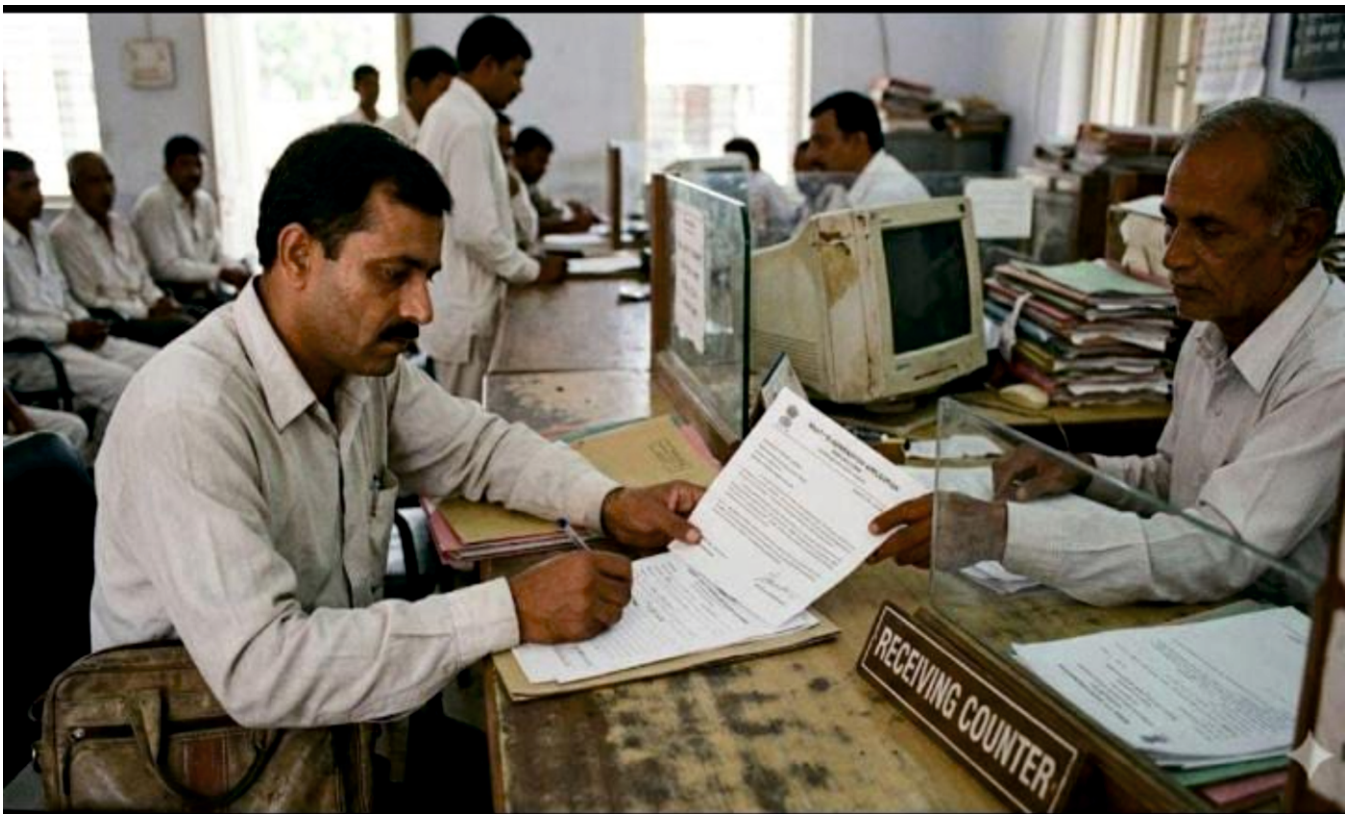


T.B. आरपी यादव
विशेष संवाददाता
राष्ट्रीय संयोजक एकता फ़ोरम

लोकतंत्र में सरकार जनता के प्रति जवाबदेह होती है, लेकिन जवाबदेही तभी मजबूत होती है जब नागरिकों के पास जानकारी तक पहुँच हो। सूचना का अधिकार (RTI) अधिनियम, 2005 ने आम नागरिक को यही शक्ति दी। पिछले दो दशकों में अनेक मामलों में आरटीआई के माध्यम से सरकारी खर्च, भर्ती प्रक्रिया, विकास योजनाओं और प्रशासनिक निर्णयों से जुड़ी जानकारियाँ सामने आई हैं, जिनके आधार पर अनियमितताओं के आरोपों की जांच शुरू हुई या सार्वजनिक बहस तेज हुई।

एक आवेदन, कई सवाल

कई बार एक साधारण-सा आरटीआई आवेदन उन फाइलों के दरवाजे खोल देता है, जिन्हें वर्षों तक केवल दफ्तरों की अलमारियों में बंद समझा जाता था। कहीं सड़क निर्माण के भुगतान और वास्तविक कार्य में अंतर सामने आता है, कहीं लाभार्थियों की सूची पर सवाल उठते हैं, तो कहीं नियुक्ति प्रक्रिया या सरकारी खरीद में पारदर्शिता को लेकर बहस शुरू हो जाती है। आरटीआई का उद्देश्य किसी व्यक्ति को दोषी ठहराना नहीं, बल्कि सरकारी रिकॉर्ड तक नागरिक की वैधानिक पहुँच सुनिश्चित करना है।



जब रिकॉर्ड बोलने लगते हैं

भ्रष्टाचार के आरोप अक्सर चर्चा का विषय बनते हैं, लेकिन आरटीआई की सबसे बड़ी ताकत यह है कि यह दस्तावेज़ों के आधार पर सवाल पूछने का अधिकार देता है। माप पुस्तिका (Measurement Book), भुगतान रजिस्टर, टेंडर दस्तावेज़, उपस्थिति रजिस्टर, उपयोगिता प्रमाणपत्र और स्वीकृति पत्र जैसे रिकॉर्ड कई बार प्रशासनिक प्रक्रियाओं की वास्तविक तस्वीर सामने लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

यही कारण है कि कई सामाजिक कार्यकर्ता, पत्रकार और जागरूक नागरिक जनहित के मामलों में आरटीआई का उपयोग करते हैं।

सिर्फ भ्रष्टाचार नहीं, सुधार का माध्यम भी

आरटीआई का उद्देश्य केवल अनियमितताओं का खुलासा करना नहीं है। कई बार सूचना मिलने के बाद विभाग स्वयं त्रुटियों को सुधारते हैं, लंबित भुगतान जारी होते हैं, रिकॉर्ड अद्यतन किए जाते हैं और प्रशासनिक प्रक्रियाओं में पारदर्शिता बढ़ती है। इस तरह यह कानून सुधार और जवाबदेही का भी एक प्रभावी माध्यम बनता है।

चुनौतियाँ भी कम नहीं

हालाँकि, सूचना पाने की राह हमेशा आसान नहीं होती। कई आवेदकों को समय पर जवाब नहीं मिलता, कभी अधूरी सूचना दी जाती है, तो कभी सूचना देने से कानूनी प्रावधानों का हवाला देकर इनकार किया जाता है।

ऐसी स्थिति में प्रथम अपील, द्वितीय अपील और संबंधित सूचना आयोग तक जाने की व्यवस्था कानून में उपलब्ध है।

पत्रकारिता और आरटीआई: मजबूत साझेदारी

खोजी पत्रकारिता में आरटीआई एक महत्वपूर्ण साधन बन चुकी है। दस्तावेज़ों के आधार पर तैयार रिपोर्टें केवल आरोपों पर नहीं, बल्कि रिकॉर्ड और तथ्यों पर आधारित होती हैं। इससे जनचर्चा अधिक प्रमाणिक और जिम्मेदार बनती है।

जवाबदेही की असली कसौटी

किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की मजबूती इस बात से तय होती है कि वह जनता के सवालों का जवाब कितनी पारदर्शिता और समयबद्ध तरीके से देती है। सूचना छिपाने से अविश्वास बढ़ता है, जबकि सूचना साझा करने से संस्थाओं की विश्वसनीयता मजबूत होती है।

सारांश

आरटीआई केवल एक कानून नहीं, बल्कि नागरिकों के हाथ में लोकतंत्र का ऐसा औजार है जो शासन और जनता के बीच पारदर्शिता का पुल बनाता है।

जब नागरिक तथ्यों के आधार पर सवाल पूछते हैं और संस्थाएँ रिकॉर्ड के आधार पर जवाब देती हैं, तभी सुशासन की दिशा मजबूत होती है।

"भ्रष्टाचार अंधेरे में पनपता है, पारदर्शिता उसकी सबसे बड़ी चुनौती है। सूचना का अधिकार उसी पारदर्शिता का लोकतांत्रिक माध्यम है।"

बांकीपुर उपचुनाव के बाद बिहार की नई बिसात

क्या प्रशांत किशोर बनेंगे तीसरा ध्रुव, या मुकाबला फिर NDA बनाम महागठबंधन तक सिमट जाएगा?



T.B. आरपी यादव
विशेष संवाददाता

बांकीपुर उपचुनाव के नतीजे ने बिहार की राजनीति में नई चर्चा छेड़ दी है। चुनाव परिणाम को अलग-अलग राजनीतिक दल अपने-अपने नजरिए से देख रहे हैं। किसी के लिए यह संगठन की मजबूती का संकेत है, तो किसी के लिए भविष्य की नई संभावनाओं का संदेश। सबसे अधिक चर्चा इस बात की है कि क्या जन सुराज और उसके संस्थापक प्रशांत किशोर आने वाले विधानसभा चुनाव में बिहार की राजनीति का स्थायी तीसरा विकल्प बन पाएंगे।

प्रशांत किशोर: प्रयोग से राजनीति तक

चुनावी रणनीतिकार के रूप में राष्ट्रीय पहचान बनाने वाले प्रशांत किशोर अब प्रत्यक्ष राजनीति में हैं। उनकी सभाओं में भीड़, शिक्षा, स्वास्थ्य और भ्रष्टाचार जैसे मुद्दों पर जोर तथा संगठन विस्तार ने उन्हें चर्चा में बनाए रखा है। लेकिन बिहार की राजनीति केवल मुद्दों से नहीं, बल्कि मजबूत संगठन, बूथ प्रबंधन और सामाजिक समीकरणों से भी तय होती है। यही उनकी सबसे बड़ी परीक्षा होगी।

NDA की रणनीति

यदि उपचुनाव में NDA को बढ़त मिलती है, तो वह इसे अपने शासन और संगठन की स्वीकृति के रूप में प्रस्तुत करेगा। ऐसे में उसकी कोशिश होगी कि विकास, कानून-व्यवस्था और कल्याणकारी योजनाओं को चुनावी विमर्श के केंद्र में रखा जाए और विपक्ष के आरोपों का जवाब इन्हीं आधारों पर दिया जाए।

महागठबंधन की चुनौती

महागठबंधन के सामने सबसे बड़ी चुनौती अपने पारंपरिक सामाजिक आधार को बनाए रखने के साथ नए और युवा मतदाताओं तक पहुँचना है। बेरोज़गारी, महंगाई, शिक्षा और प्रतियोगी परीक्षाओं जैसे मुद्दे उसके लिए प्रमुख चुनावी हथियार हो सकते हैं। साथ ही उसे संगठनात्मक एकजुटता भी बनाए रखनी होगी।

तीसरे विकल्प की राजनीति



बिहार में तीसरे मोर्चे की चर्चा नई नहीं है, लेकिन उसे स्थायी जनाधार में बदलना हमेशा कठिन रहा है। यदि जन सुराज उन मतदाताओं को आकर्षित कर पाता है जो पारंपरिक दलों से निराश हैं, तो चुनावी समीकरण बदल सकते हैं। यदि ऐसा नहीं होता, तो मुकाबला फिर NDA और महागठबंधन के बीच ही केंद्रित रह सकता है।

युवा मतदाता होंगे निर्णायक

इस चुनाव में पहली बार मतदान करने वाले युवा, प्रतियोगी परीक्षा के अभ्यर्थी, शहरी मतदाता और बेरोज़गारी से प्रभावित वर्ग महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इन वर्गों के मुद्दे किसी भी दल के लिए निर्णायक साबित हो सकते हैं।

आगे की संभावनाएँ

राजनीतिक विश्लेषकों के अनुसार, एक उपचुनाव का परिणाम पूरे विधानसभा चुनाव का अंतिम संकेत नहीं माना जा सकता। विधानसभा चुनाव में स्थानीय उम्मीदवार, गठबंधन, सामाजिक समीकरण, चुनाव प्रचार, संगठन और मतदाता व्यवहार जैसे कई कारक मिलकर परिणाम तय करते हैं। इसलिए बांकीपुर का परिणाम महत्वपूर्ण संकेत हो सकता है, लेकिन भविष्य का निश्चित निष्कर्ष नहीं।

सारांश - बांकीपुर उपचुनाव ने इतना जरूर स्पष्ट किया है कि बिहार की राजनीति लगातार बदल रही है। आने वाले समय में यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि क्या प्रशांत किशोर और उनकी पार्टी राज्य की राजनीति में स्थायी तीसरे विकल्प के रूप में जगह बना पाते हैं, या मुकाबला फिर से मुख्यतः N D A और महागठबंधन के बीच सिमट जाता है।

संपादकीय टिप्पणी: लोकतंत्र में अंतिम फैसला मतदाता करता है। किसी भी उपचुनाव का परिणाम महत्वपूर्ण संकेत दे सकता है, लेकिन उसे पूरे राज्य की राजनीतिक दिशा का अंतिम निष्कर्ष मानना उचित नहीं होगा। अगले चुनाव तक राजनीतिक परिस्थितियाँ, गठबंधन और जनमत बदल सकते हैं।

पटना की सड़कों पर उबाल

बंटी यादव हत्याकांड के बाद न्याय की मांग, शासन-प्रशासन पर उठे सवाल

T.B. आरपी यादव
विशेष संवाददाता

बिहार की राजधानी पटना हाल के दिनों में एक ऐसी घटना का गवाह बनी जिसने कानून-व्यवस्था, अपराध नियंत्रण और आम नागरिक की सुरक्षा को लेकर व्यापक बहस छेड़ दी। बंटी यादव हत्याकांड के बाद राजधानी की सड़कों पर विरोध-प्रदर्शन, नारेबाजी और न्याय की मांग ने यह संकेत दिया कि यह मामला केवल एक आपराधिक घटना तक सीमित नहीं रहा, बल्कि जनविश्वास और प्रशासनिक जवाबदेही का विषय भी बन गया।



सड़क पर उतरा आक्रोश

घटना के बाद विभिन्न सामाजिक संगठनों, स्थानीय नागरिकों और समर्थकों ने विरोध प्रदर्शन किए। प्रदर्शनकारियों की मुख्य मांग थी कि मामले की निष्पक्ष और त्वरित जांच हो, दोषियों की जल्द गिरफ्तारी हो तथा पीड़ित परिवार को न्याय मिले। कई स्थानों पर सुरक्षा व्यवस्था कड़ी की गई और प्रशासन ने कानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए अतिरिक्त पुलिस बल तैनात किया।

कानून-व्यवस्था पर बहस

बिहार में अपराध की प्रत्येक बड़ी घटना के बाद कानून-व्यवस्था पर राजनीतिक और सामाजिक बहस तेज़ हो जाती है। विपक्ष सरकार से जवाब मांगता है, जबकि सरकार अपराधियों के खिलाफ कार्रवाई और जांच की प्रगति का हवाला देती है। ऐसे मामलों में जनता की अपेक्षा केवल बयान नहीं, बल्कि तेज़ और पारदर्शी कार्रवाई होती है।

शासन की सबसे बड़ी परीक्षा

किसी भी लोकतांत्रिक सरकार की विश्वसनीयता इस बात से तय होती है कि वह संवेदनशील घटनाओं में कितनी शीघ्रता, निष्पक्षता और पारदर्शिता के साथ कार्रवाई करती है। हत्या जैसे गंभीर मामलों में जांच की गति, साक्ष्यों का संरक्षण, अभियुक्तों की गिरफ्तारी और निष्पक्ष अभियोजन—यही न्याय प्रक्रिया की असली कसौटी हैं।

प्रशासन के सामने चुनौती

ऐसी घटनाएँ प्रशासन के लिए दोहरी चुनौती लेकर आती हैं। एक ओर अपराध की निष्पक्ष जांच सुनिश्चित करना, दूसरी ओर विरोध-प्रदर्शनों के दौरान कानून-व्यवस्था बनाए रखना। लोकतांत्रिक व्यवस्था में शांतिपूर्ण विरोध का सम्मान और सार्वजनिक सुरक्षा दोनों का संतुलन आवश्यक है।

जनता का सबसे बड़ा सवाल

लोग यह जानना चाहते हैं कि क्या अपराध होने के बाद ही व्यवस्था सक्रिय होगी, या ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए पहले से प्रभावी रणनीति बनाई जाएगी? बेहतर पुलिसिंग, त्वरित जांच, आधुनिक तकनीक का उपयोग और समुदाय के साथ संवाद—इन्हें लंबे समय से अपराध नियंत्रण के महत्वपूर्ण उपाय माना जाता है।

सारांश - बंटी यादव हत्याकांड ने केवल एक परिवार को नहीं, बल्कि समाज में सुरक्षा और न्याय को लेकर कई सवाल खड़े किए हैं। किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचना जांच और न्यायिक प्रक्रिया का विषय है, लेकिन यह स्पष्ट है कि ऐसे मामलों में जनता निष्पक्ष जांच, समयबद्ध कार्रवाई और पारदर्शी न्याय की अपेक्षा करती है। यही भरोसा लोकतांत्रिक शासन की सबसे बड़ी ताकत है।

संपादकीय टिप्पणी: अपराध पर राजनीति से अधिक महत्वपूर्ण है कि जांच निष्पक्ष हो, दोषियों को कानून के अनुसार दंड मिले और पीड़ित परिवार को न्याय सुनिश्चित हो। यही सुशासन और विधि के शासन की पहचान है।

जंतर-मंतर से बिहार की सड़कों तक छात्रों का उबाल, व्यवस्था पर सवाल



तेजसबिंदु न्यूज़ नेटवर्क

दिल्ली के जंतर-मंतर से उठी छात्रों की आवाज़ अब बिहार के शहरों और कस्बों तक गूंज रही है। प्रतियोगी परीक्षाओं में कथित अनियमितताओं, पेपर लीक और परीक्षा प्रणाली में भरोसे के संकट को लेकर छात्रों का आंदोलन लगातार तेज़ हुआ है। प्रदर्शनकारियों की प्रमुख मांगों में परीक्षा व्यवस्था में सुधार, दोषियों पर सख्त कार्रवाई और केंद्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान के इस्तीफे की मांग भी शामिल रही है।

बिहार बना आंदोलन का बड़ा केंद्र

हाल के दिनों में पटना सहित बिहार के कई हिस्सों में छात्र संगठनों ने प्रदर्शन किए। पुलिस कार्रवाई के दौरान कई छात्रों को हिरासत में लिया गया। कुछ मामलों में छात्रों और नागरिक संगठनों ने आरोप लगाया कि हिरासत लंबी चली और आंदोलन को बलपूर्वक दबाने की कोशिश की गई, जबकि प्रशासन ने कानून-व्यवस्था बनाए रखने की आवश्यकता बताई।

AK-47 फायरिंग ने बढ़ाए सवाल



बिहार के सिवान में आंदोलन के दौरान पुलिस द्वारा AK-47 से फायरिंग की घटना ने व्यापक बहस छेड़ दी। बाद में संबंधित पुलिसकर्मी के विरुद्ध कार्रवाई की गई। इस घटना ने यह प्रश्न भी उठाया कि छात्र आंदोलनों से निपटने में बल प्रयोग की सीमा क्या होनी चाहिए।

गुस्से की जड़ क्या है?

यह आंदोलन केवल एक परीक्षा तक सीमित नहीं दिखाई देता। बड़ी संख्या में युवा इसे शिक्षा, रोजगार और भविष्य की अनिश्चितता से जोड़कर देख रहे हैं। वर्षों की तैयारी के बाद यदि परीक्षा की निष्पक्षता पर सवाल उठें या परीक्षा रद्द हो जाए, तो छात्रों में निराशा और असंतोष बढ़ना स्वाभाविक है।

सरकार के सामने चुनौती

सरकार का कहना है कि परीक्षा प्रणाली को अधिक सुरक्षित बनाने और दोषियों के खिलाफ कार्रवाई के लिए कदम उठाए जा रहे हैं। दूसरी ओर छात्र संगठन केवल कार्रवाई नहीं, बल्कि ऐसी व्यवस्था चाहते हैं जिसमें भविष्य में इस तरह की घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो।

संपादकीय टिप्पणी

लोकतंत्र में विरोध प्रदर्शन नागरिकों का अधिकार है, वहीं शांति और कानून-व्यवस्था बनाए रखना प्रशासन की जिम्मेदारी है। समाधान तभी निकलेगा जब छात्रों की चिंताओं को गंभीरता से सुना जाए, जांच निष्पक्ष हो और शिक्षा व्यवस्था में पारदर्शिता तथा जवाबदेही को मजबूत किया जाए।

सारांश

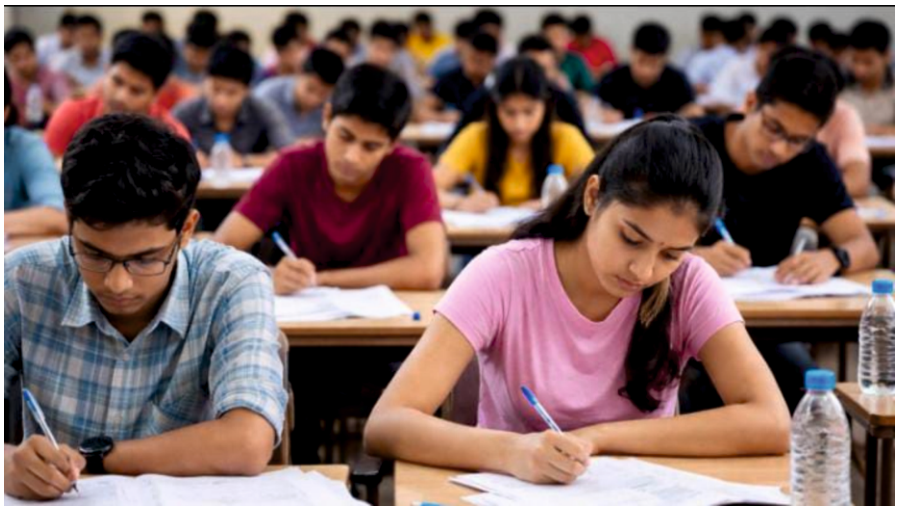
जंतर-मंतर से लेकर बिहार की सड़कों तक उठी यह आवाज़ केवल एक आंदोलन नहीं, बल्कि युवाओं के विश्वास, अवसर और भविष्य से जुड़ा प्रश्न बन चुकी है। यदि शिक्षा व्यवस्था पर भरोसा कमजोर पड़ता है, तो उसका असर केवल परीक्षाओं पर नहीं, बल्कि पूरे समाज के भविष्य पर पड़ता है।

पेपर लीक का कारोबार

किसके हाथों बिक रहा है छात्रों का भविष्य?

T.B. विशेष संवाददाता

हर साल करोड़ों छात्र-छात्राएँ सरकारी नौकरी और उच्च शिक्षा के सपनों को लेकर दिन-रात मेहनत करते हैं। लेकिन जब परीक्षा से पहले प्रश्नपत्र लीक होने की खबर आती है, तो सबसे पहले टूटता है छात्रों का विश्वास। पेपर लीक अब केवल एक अपराध नहीं, बल्कि शिक्षा व्यवस्था पर लगा ऐसा दाग बन चुका है जो मेहनत, ईमानदारी और समान अवसर—तीनों को चुनौती देता है।



मेहनत बनाम माफिया

देश के कई राज्यों में पिछले वर्षों के दौरान भर्ती परीक्षाओं और प्रवेश परीक्षाओं में प्रश्नपत्र लीक होने या अनियमितताओं के आरोप सामने आए हैं। कई मामलों में जांच एजेंसियों ने गिरफ़्तारियाँ भी कीं। हर घटना के बाद सख्त कार्रवाई और सुधार के वादे होते हैं, लेकिन समय बीतने के साथ वही सवाल फिर लौट आता है—क्या व्यवस्था वास्तव में बदल रही है? पेपर लीक का सबसे बड़ा नुकसान उस छात्र को होता है जिसने वर्षों तक ईमानदारी से तैयारी की। परीक्षा रद्द होने पर उसे दोबारा फीस, यात्रा, समय और मानसिक तनाव का सामना करना पड़ता है।

कैसे काम करता है यह नेटवर्क?

जांच एजेंसियों द्वारा सामने आए विभिन्न मामलों से संकेत मिलता है कि पेपर लीक के नेटवर्क में अलग-अलग स्तरों पर लोगों की भूमिका हो सकती है। आरोपों में परीक्षा प्रक्रिया से जुड़े कुछ कर्मियों, तकनीकी तंत्र का दुरुपयोग करने वाले तत्वों, बिचौलियों और अभ्यर्थियों से मोटी रकम वसूलने वाले गिरोहों का उल्लेख मिलता रहा है। हालांकि, हर मामले में अंतिम निष्कर्ष न्यायिक प्रक्रिया और जांच के बाद ही तय होता है।

छात्रों का बढ़ता आक्रोश

परीक्षाएँ रद्द होने से लाखों युवाओं की उम्र, आर्थिक स्थिति और मानसिक स्वास्थ्य पर असर पड़ता है। कई अभ्यर्थी वर्षों तक केवल प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करते हैं। जब परीक्षा निष्पक्ष न हो, तो उनके मन में व्यवस्था के प्रति अविश्वास बढ़ना स्वाभाविक है।

विशेषज्ञों का मानना है कि केवल कठोर कानून बना देना पर्याप्त नहीं होगा। परीक्षा प्रक्रिया को अधिक सुरक्षित बनाने के लिए डिजिटल सुरक्षा, गोपनीय प्रिंटिंग व्यवस्था, जिम्मेदार अधिकारियों की जवाबदेही, समयबद्ध जांच और दोषियों को शीघ्र दंड जैसी व्यवस्थाएँ भी उतनी ही आवश्यक हैं।

बदलाव की दिशा

यदि शिक्षा व्यवस्था में पारदर्शिता और जवाबदेही को प्राथमिकता दी जाए, तकनीकी सुरक्षा को मजबूत किया जाए और हर स्तर पर निष्पक्षता सुनिश्चित की जाए, तो छात्रों का विश्वास दोबारा जीता जा सकता है। देश की सबसे बड़ी पूंजी उसके युवा हैं; उनके सपनों की रक्षा करना केवल सरकार या संस्थानों का नहीं, पूरे समाज का दायित्व है।

सारांश -पेपर लीक का हर मामला केवल एक परीक्षा को प्रभावित नहीं करता, बल्कि लाखों युवाओं के भविष्य और लोकतांत्रिक संस्थाओं पर भरोसे को भी चोट पहुँचाता है। शिक्षा व्यवस्था की विश्वसनीयता तभी मजबूत होगी जब ईमानदारी से पढ़ने वाले छात्र को यह भरोसा हो कि उसकी मेहनत का मूल्य किसी अवैध नेटवर्क से कम नहीं आँका जाएगा।

(यह एक मौलिक, पत्रिका-शैली की विशेष रिपोर्ट है। इसमें किसी विशिष्ट व्यक्ति, संस्था या घटना पर बिना प्रमाण आरोप नहीं लगाए गए हैं।)

जन-अधिकार: सवाल पूछने से समाधान तक

RTI, जनसुनवाई और शिकायत व्यवस्था आम आदमी की आवाज को जवाबदेही में बदलने का रास्ता

T.B. आरपी यादव
राष्ट्रीय संयोजक एकता फ़ोरम



लोकतंत्र में जनता केवल वोट देने वाली नहीं, बल्कि शासन व्यवस्था की महत्वपूर्ण हिस्सेदार है। सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य, राशन, रोजगार और सरकारी योजनाओं से जुड़े सवालों पर नागरिक को जानकारी मांगने, शिकायत करने और जवाब पाने का अधिकार है।

RTI: सवाल को दस्तावेज में बदलने की ताकत

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 नागरिकों को सरकारी रिकॉर्ड से संबंधित जानकारी प्राप्त करने का कानूनी माध्यम देता है। योजना में कितना पैसा स्वीकृत हुआ, किस मद में खर्च हुआ, काम किसे मिला और उसकी स्थिति क्या है—ऐसे सवाल सरकारी दावों की वास्तविक तस्वीर समझने में मदद कर सकते हैं।

संदेह आरोप नहीं होता; दस्तावेज पड़ताल को मजबूत बनाते हैं।

जनसुनवाई: शिकायत से कार्रवाई तक हर समस्या RTI से हल नहीं होती। कई मामलों में संबंधित विभाग या प्रशासन के सामने शिकायत दर्ज कराना जरूरी होता है। लेकिन शिकायत दर्ज होना अंतिम समाधान नहीं। नागरिक को यह भी देखना चाहिए कि शिकायत किस अधिकारी के पास गई, जांच क्या हुई और कार्रवाई का परिणाम क्या रहा।

जवाब नहीं मिला तो आगे का रास्ता

RTI में निर्धारित प्रक्रिया के तहत अपील की व्यवस्था है। अन्य प्रशासनिक शिकायतों में भी संबंधित नियमों के अनुसार अपीलीय या शिकायत निवारण व्यवस्था का उपयोग किया जा सकता है। इसलिए आवेदन, प्राप्ति, जवाब और कार्रवाई से जुड़े दस्तावेज सुरक्षित रखना जरूरी है।



अधिकार का इस्तेमाल, जिम्मेदारी के साथ

जन-अधिकार का अर्थ प्रशासन से टकराव नहीं, बल्कि कानूनी तरीके से जवाबदेही सुनिश्चित करना है। हर प्रशासनिक देरी को भ्रष्टाचार मानना उचित नहीं; पहले तथ्य जुटाना, फिर सवाल पूछना और उसके बाद निष्कर्ष निकालना ही जिम्मेदार नागरिकता और पत्रकारिता है।

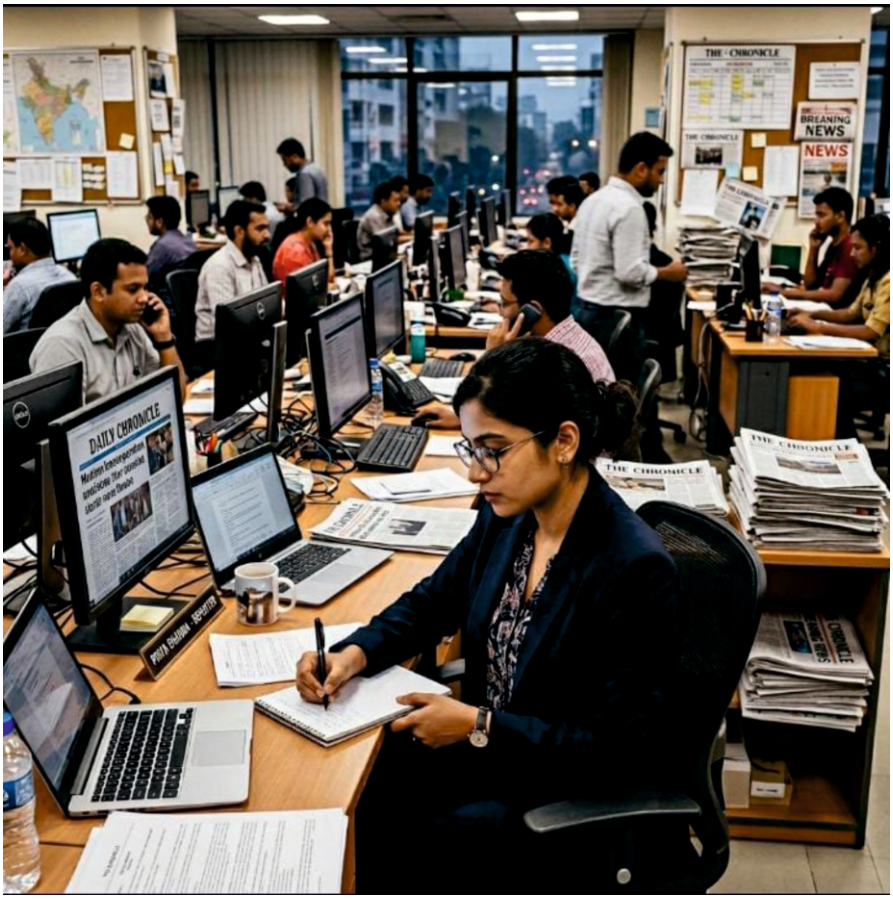
सारांश- RTI, जनसुनवाई और शिकायत व्यवस्था आम नागरिक को केवल शिकायतकर्ता नहीं, बल्कि जागरूक और सहभागी नागरिक बनने का अवसर देती हैं।

"लोकतंत्र में सवाल पूछने वाला नागरिक समस्या नहीं, जवाबदेही की सबसे मजबूत आवाज है।"

मीडिया: लोकतंत्र की आवाज या सिर्फ खबरों का बाजार?

खबर वही, जो सवाल भी उठाए और सच भी दिखाए

T.B. आरपी यादव
सह सम्पादक



लोकतंत्र में मीडिया केवल घटनाएँ बताने का माध्यम नहीं, बल्कि जनता और शासन के बीच संवाद का महत्वपूर्ण पुल है। उसकी जिम्मेदारी है कि वह सत्ता से सवाल पूछे, जनता की समस्याओं को सामने लाए और तथ्यों के आधार पर समाज को सही तस्वीर दिखाए। आज सोशल मीडिया और तेज न्यूज की प्रतिस्पर्धा में सबसे बड़ी चुनौती है पहले खबर देने की होड़ या पहले खबर की पुष्टि? वायरल होना सत्य की गारंटी नहीं। पत्रकारिता की असली कसौटी है तथ्य, निष्पक्षता और जनहित।

तीन सवाल, हर खबर की पहचान

क्या तथ्य सही है?

स्रोत विश्वसनीय है?क्या संबंधित पक्ष का पक्ष लिया गया है?

किसी भ्रष्टाचार, प्रशासनिक लापरवाही या जनसमस्या को दस्तावेज और प्रमाण के साथ सामने लाना पत्रकारिता को मजबूत बनाता है। वहीं बिना पुष्टि के आरोप खबर को सवालों के घेरे में ला सकते हैं।



मीडिया की असली ताकत

बड़ी खबर वह नहीं जो सबसे ज्यादा वायरल हो, बल्कि वह है जो आम आदमी की आवाज को व्यवस्था तक पहुँचाए और व्यवस्था को जवाबदेह बनाए।

सारांश

पत्रकारिता न सत्ता की अंधभक्ति है, न अंधविरोध। सच्ची पत्रकारिता का पक्ष केवल सत्य और जनहित है।

गरीबों का मसीहा, युवाओं का जोश
जननायक पप्पू यादव

सियासत से आगे जनसेवा की पहचान संकट में जनता के बीच खड़े रहने वाले नेता की कहानी



T.B. बिहार

सुबह का वक्त है। किसी सरकारी अस्पताल के बाहर मरीज के परिजन परेशान खड़े हैं। किसी गांव में बाढ़ का पानी घरों में घुस चुका है। कहीं किसी गरीब परिवार के सामने इलाज का खर्च जुटाने की चुनौती है तो कहीं कोई युवा हाथ में डिग्री लेकर नौकरी की तलाश में भटक रहा है।

बिहार की राजनीति में ऐसे दृश्य नए नहीं हैं। लेकिन इन दृश्यों के बीच एक ऐसा चेहरा बार-बार दिखाई देता रहा है, जिसे उसके समर्थक पप्पू यादव के नाम से पहचानते हैं।

राजेश रंजन उर्फ पप्पू यादव की राजनीति को केवल चुनावी आंकड़ों से समझना आसान नहीं है। उनकी कहानी विधानसभा से संसद तक पहुंचने की कहानी जरूर है, लेकिन इसके साथ इसमें सड़क पर उतरने, अस्पताल पहुंचने, बाढ़ पीड़ितों के बीच जाने, गरीब परिवारों की मदद करने और युवाओं की आवाज उठाने का दावा भी जुड़ा है। समर्थकों की नजर में वे गरीबों के मसीहा हैं,

युवाओं के लिए आवाज हैं और संकट के समय साथ खड़े रहने वाले जनप्रतिनिधि हैं। आलोचक उनकी राजनीति को अलग नजर से देखते हैं। मगर एक बात जरूर है—पप्पू यादव की राजनीतिक पहचान सिर्फ संसद की कुर्सी से नहीं बनी, बल्कि जनता के बीच बने उनके व्यक्तिगत संपर्क से भी बनी है।

एक निर्दलीय युवक से शुरू हुई कहानी

पप्पू यादव की कहानी उस समय शुरू होती है, जब बिहार की राजनीति में बड़े दलों और बड़े नेताओं का दबदबा था। वर्ष 1990 में उन्होंने सिंहेश्वर विधानसभा सीट से निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ा। यह कोई आसान राजनीतिक रास्ता नहीं था। न कोई बड़ा दल, न पार्टी का मजबूत चुनावी ढांचा सामने था सिर्फ अपना भरोसा और जनता से सीधा संपर्क। नतीजा आया तो राजनीतिक गलियारों में एक नया नाम चर्चा में था।पप्पू यादव विधायक बन चुके थे। अगले ही साल उन्होंने विधानसभा से आगे बढ़कर लोकसभा का रास्ता पकड़ लिया। 1991 में पूर्णिया से निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में संसद पहुंचने के साथ उनकी राजनीति बिहार की सीमाओं से निकलकर दिल्ली तक पहुंच गई। इसके बाद कभी समाजवादी पार्टी, कभी राजद और कभी निर्दलीय पप्पू यादव का राजनीतिक सफर कई मोड़ों से गुजरा। लेकिन उनके साथ एक चीज लगातार बनी रही

जनता से सीधा संपर्क।

जब राजनीति से ज्यादा जरूरी लगा इंसान पप्पू यादव की राजनीतिक शैली को समझने के लिए चुनावी मंच से ज्यादा महत्वपूर्ण है वह समय, जब चुनाव नहीं होते। बाढ़ आती है। बारिश से गांव डूबते हैं। सड़कें टूट जाती हैं। गरीब परिवारों के घरों में चूल्हा जलना मुश्किल हो जाता है। ऐसे समय में पप्पू यादव के समर्थक उन्हें राहत सामग्री लेकर प्रभावित लोगों के बीच खड़े देखते हैं। पूर्णिया और सीमांचल में बाढ़ के दौरान उनके दौरे और राहत वितरण की खबरें सामने



आती रही हैं। 2025 में भी बाढ़ और अग्निपीड़ित परिवारों को सहायता देने की रिपोर्टें प्रकाशित हुईं। लेकिन कहानी सिर्फ राहत सामग्री बांटने तक सीमित नहीं है बाढ़ के पानी के बीच खड़ा वह परिवार, जिसने रातभर अपने बच्चों को किसी ऊंचे स्थान पर बैठाकर रखा हो, उसके लिए किसी नेता का वहां पहुंचना सिर्फ राजनीतिक दौरा नहीं होता। वह उस परिवार के लिए यह संदेश होता है "कोई हमारी परेशानी सुनने वाला भी है।"

कोरोना ने बदल दी तस्वीर

फिर आया वह दौर, जिसे दुनिया कभी भूल नहीं पाएगी। कोरोना। अस्पतालों के बाहर लंबी कतारें थीं। ऑक्सीजन के लिए लोग परेशान थे। दवाइयां मिलना मुश्किल था। कई परिवार अपने मरीज को लेकर एक अस्पताल से दूसरे अस्पताल तक भटक रहे थे। पटना के अस्पतालों में उस समय पप्पू यादव के पहुंचने की खबरें सामने आईं। मरीजों और उनके परिजनों से बात करने से लेकर ऑक्सीजन और दवाइयों की उपलब्धता तक उन्होंने कई मुद्दे उठाए। उनकी ओर से ऑक्सीजन सिलेंडर और दवाइयां उपलब्ध कराने तथा मरीजों के परिजनों के लिए भोजन की व्यवस्था करने की खबरें भी सामने आईं। इसी दौरान 'पप्पू की रसोई' चर्चा में आई। अस्पताल के बाहर बैठा वह परिवार, जिसके घर का सदस्य जिंदगी और मौत के बीच संघर्ष कर रहा था, उसके लिए एक वक्त का खाना भी बड़ी मदद थी। यहीं से पप्पू यादव की समर्थक-छवि में एक नया शब्द जुड़ता गया "संकट में साथ खड़े होने वाला नेता।" हालांकि कोरोना काल की उनकी राजनीति का दूसरा पहलू भी था। सरकार के साथ उनके टकराव बढ़े और अंततः उन्हें गिरफ्तार भी किया गया। यानी कोरोना ने पप्पू यादव के राजनीतिक जीवन में मदद, संघर्ष और टकराव तीनों तस्वीरें एक साथ दिखाईं। गरीब के घर की चौखट पर राजनीति राजनीति में भाषण देना आसान है। गरीब के घर तक पहुंचना कठिन। किसी के घर आग लगी हो, किसी की फसल बर्बाद हुई हो या किसी परिवार में बीमारी ने आर्थिक संकट खड़ा कर दिया हो ऐसे समय में व्यक्तिगत सहायता पहुंचाना पप्पू यादव की राजनीति का एक चर्चित हिस्सा रहा है पूर्णिया में बाढ़ और अग्निपीड़ित परिवारों के बीच सहायता बांटने

की खबरें इसी छवि को मजबूत करती हैं। लेकिन यहां एक सवाल भी खड़ा होता है। क्या किसी गरीब को एक बार आर्थिक सहायता मिल जाना उसकी समस्या का स्थायी समाधान है? नहीं। एक परिवार को कुछ हजार रुपये मिल सकते हैं। लेकिन उसके लिए रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा की जरूरत हमेशा बनी रहती है। इसलिए पप्पू यादव की जनसेवा की असली परीक्षा सिर्फ इस बात से नहीं हो सकती कि उन्होंने कितने परिवारों की मदद की। बड़ी परीक्षा यह होगी कि वे गरीबी पैदा करने वाली परिस्थितियों के खिलाफ कितनी प्रभावी राजनीतिक लड़ाई लड़ पाते हैं।

युवाओं की आंखों में नौकरी का सपना बिहार का युवा आज दो तस्वीरों के बीच खड़ा है। एक तरफ हाथ में डिग्री है। दूसरी तरफ नौकरी की तलाश। गांव से शहर, शहर से पटना और पटना से दिल्ली तक—प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में जुटे युवाओं की एक पूरी पीढ़ी है। कोई शिक्षक बनने का सपना देख रहा है। कोई पुलिस की नौकरी चाहता है। कोई रेलवे की परीक्षा दे रहा है। कोई एसएससी की तैयारी कर रहा है। और कोई डिग्री पूरी करने के बाद भी रोजगार की तलाश में है। पप्पू यादव लगातार बेरोजगारी और युवाओं के सवालों को राजनीतिक मुद्दा बनाते रहे हैं। उनकी सभाओं और बयानों में रोजगार, परीक्षा व्यवस्था और युवाओं के भविष्य से जुड़े सवाल दिखाई देते हैं। लेकिन युवा भी अब सवाल पूछता है "साहब, आवाज उठाने के बाद नौकरी कब मिलेगी?" यही वह सवाल है, जहां हर नेता की राजनीति की असली परीक्षा शुरू होती है।

पलायन: घर से दूर होती एक पूरी पीढ़ी

बिहार के गांवों में शाम को जब मजदूर का परिवार घर लौटता है तो कई घरों में एक सदस्य कम होता है। वह दिल्ली में हो सकता है। पंजाब के खेतों में हो सकता है। हरियाणा की फैक्ट्री में हो सकता है। महाराष्ट्र या गुजरात में मजदूरी कर रहा हो सकता है। किसी दूसरे राज्य के निर्माण स्थल पर पसीना बहा रहा हो सकता है। यह सिर्फ रोजगार नहीं है। यह पलायन का दर्द है। कोरोना काल में जब हजारों प्रवासी मजदूर पैदल या दूसरे साधनों से बिहार लौट रहे थे, तब उनकी मदद और परिवहन से जुड़ी पप्पू यादव की गतिविधियां भी खबरों में आईं। लेकिन सवाल वहीं खड़ा है मजदूर को घर पहुंचा देना समाधान नहीं है। स्थायी समाधान तब होगा, जब वही मजदूर अपने गांव या जिले में सम्मानजनक रोजगार पा सके। अस्पताल में सांसद नहीं, मरीज की आवाज पूर्णिया मेडिकल कॉलेज अस्पताल में पप्पू यादव के औचक निरीक्षण की तस्वीरें और खबरें भी सामने आईं।



उन्होंने मरीजों और उनके परिजनों से बात की। कहीं साफ-सफाई की शिकायत थी। कहीं दवाइयों की चिंता। कहीं मरीज के साथ आए परिवार के लोग परेशान थे। एक नेता जब अस्पताल के वार्ड में जाकर किसी मरीज से पूछता है "इलाज ठीक से हो रहा है?" तो सवाल सिर्फ उस मरीज तक सीमित नहीं रहता। वह सवाल डॉक्टर से आगे बढ़कर पूरे स्वास्थ्य तंत्र से होता है। पप्पू यादव की राजनीति में अस्पतालों का निरीक्षण इसी कारण महत्वपूर्ण दिखाई देता है। लेकिन यहां भी जनता का सवाल साफ है निरीक्षण के बाद व्यवस्था कितनी बदली क्योंकि जनता को अब सिर्फ निरीक्षण नहीं चाहिए। उसे इलाज चाहिए।

सीमांचल: हर साल वही बाढ़, वही दर्द

पूर्णिया और सीमांचल की राजनीति को बाढ़ से अलग करके देखना मुश्किल है। नदी का पानी बढ़ता है। खेत डूबते हैं। घर टूटते हैं। सड़कें कट जाती हैं। फसल बर्बाद होती है। और फिर शुरू होती है राहत की राजनीति। पप्पू यादव बाढ़ के दौरान प्रभावित इलाकों में पहुंचते रहे हैं और राहत सामग्री तथा आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने की पहल करते रहे हैं। लेकिन सीमांचल की जनता का दर्द इससे बड़ा है। उसे हर साल राहत नहीं चाहिए। उसे ऐसी व्यवस्था चाहिए कि नदी कटाव रोका जाए। बाढ़ का स्थायी समाधान निकले। खेत बचें। घर बचें। रोजगार मिले। अस्पताल बेहतर हों। बच्चों को अच्छी शिक्षा मिले। यही सीमांचल की असली लड़ाई है। क्यों कहते हैं लोग—गरीबों का मसीहा पप्पू यादव को 'गरीबों का मसीहा' कहने वाले उनके समर्थक कई घटनाएं गिनाते हैं। बाढ़ में राहत। बीमारी में सहायता। अस्पताल में मरीजों की आवाज। कोरोना में भोजन और ऑक्सीजन की पहल। बेरोजगार युवाओं के सवाल। प्रवासी मजदूरों की मदद। और मुसीबत में फंसे परिवारों तक व्यक्तिगत रूप से पहुंचने की कोशिश। इन घटनाओं ने उनकी एक ऐसी

राजनीतिक छवि बनाई, जिसमें नेता और आम आदमी के बीच दूरी कम दिखाई देती है। लेकिन पत्रकारिता की भाषा में 'मसीहा' कोई स्थापित तथ्य नहीं, बल्कि समर्थकों की भावना है। सच्ची पत्रकारिता यही कहेगी—जनता का एक वर्ग उन्हें मसीहा मानता है, जबकि उनकी राजनीति को लेकर आलोचनाएं भी मौजूद हैं।

संघर्ष भी, विवाद भी

पप्पू यादव का राजनीतिक जीवन सिर्फ जनसेवा की तस्वीरों से नहीं बना। उनके जीवन में गंभीर राजनीतिक और कानूनी विवाद भी रहे। अजीत सरकार हत्याकांड में निचली अदालत ने उन्हें दोषी ठहराया था। बाद में 2013 में पटना हाईकोर्ट ने उन्हें पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में बरी कर दिया। यह प्रसंग उनके राजनीतिक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है।इसीलिए पप्पू यादव पर लिखी जाने वाली किसी भी गंभीर पत्रकारिता में केवल प्रशंसा नहीं होनी चाहिए। उपलब्धियां भी लिखी जाएं। विवाद भी लिखे जाएं। समर्थकों की बात भी हो। आलोचकों की आवाज भी हो। क्योंकि किसी नेता की पूरी कहानी तभी बनती है, जब उसके उजाले के साथ उसकी छाया भी दिखाई जाए। जननायक की असली परीक्षा पप्पू यादव के समर्थक उन्हें जननायक कहते हैं। उनकी ताकत है—जनता के बीच जाना। उनकी ताकत है—संकट में पहुंचना। उनकी ताकत है—व्यक्तिगत



जनसंपर्क। लेकिन यही ताकत अब उनकी सबसे बड़ी चुनौती भी है। क्योंकि जनता पूछ रही है गरीब को मदद मिली, लेकिन उसकी आमदनी कब बढ़ेगी? युवा की आवाज उठी, लेकिन नौकरी कब मिलेगी? अस्पताल का निरीक्षण हुआ, लेकिन व्यवस्था कब सुधरेगी? बाढ़ में राहत मिली, लेकिन अगली बाढ़ क्यों आती है? मजदूर को घर पहुंचाया गया, लेकिन बिहार में रोजगार कब मिलेगा? यही सवाल पप्पू यादव की राजनीति को जनसेवा से शासन और व्यवस्था परिवर्तन की ओर ले जाते हैं। मसीहा से व्यवस्था निर्माता बनने की चुनौती पप्पू यादव की कहानी का सबसे दिलचस्प पहलू यही है। एक नेता संकट के समय जनता के बीच खड़ा हो सकता है। वह किसी गरीब को आर्थिक मदद दे सकता है। वह अस्पताल पहुंचकर मरीज की समस्या उठा सकता है। वह बाढ़ पीड़ित को राहत दे सकता है। लेकिन



लोकतंत्र की अंतिम सफलता तब होगी, जब ऐसी व्यवस्था बने जिसमें गरीब को इलाज के लिए किसी नेता को फोन न करना पड़े। युवा को नौकरी के लिए किसी नेता के दरवाजे पर न जाना पड़े। मजदूर को रोजगार के लिए हजारों किलोमीटर दूर न जाना पड़े। बाढ़ पीड़ित को हर साल राहत की लाइन में न लगना पड़े। यही वह पड़ाव है जहां पप्पू यादव की जनसेवा की राजनीति को व्यवस्था की राजनीति में बदलना होगा।

कहानी अभी बाकी है...

1990 में एक निर्दलीय विधायक के रूप में शुरू हुआ सफर संसद तक पहुंचा। कई राजनीतिक दल आए और गए। अपनी पार्टी बनी। राजनीतिक संकट आए। हार मिली। फिर वापसी हुई। और 2024 में पूर्णिया से निर्दलीय जीत के साथ वे छठी बार लोकसभा पहुंचे। लेकिन पप्पू यादव की कहानी का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय शायद अभी लिखा जाना बाकी है। क्योंकि चुनाव जीतना एक नेता को सांसद बनाता है। लेकिन जनता के संकट को स्थायी रूप से कम करना ही उसे जननायक बनाता है।

आज पूर्णिया और सीमांचल की गलियों में उनकी राजनीति को लेकर अलग-अलग राय हो सकती है। किसी के लिए वे गरीबों की उम्मीद हैं। किसी के लिए युवाओं की आवाज। किसी के लिए संघर्षशील नेता। और किसी के लिए एक विवादित राजनीतिक व्यक्तित्व। लेकिन लोकतंत्र में अंतिम फैसला जनता के पास है। जनता ही तय करेगी पप्पू यादव सिर्फ संकट में खड़ा होने वाले नेता हैं, या बिहार के संकटों का स्थायी समाधान देने वाले जननायक भी बन पाएंगे। गरीबों की पीड़ा से व्यवस्था तक, युवाओं के जोश से रोजगार तक, बाढ़ की त्रासदी से स्थायी समाधान तक पप्पू यादव की अगली राजनीतिक यात्रा की असली कहानी यहीं से शुरू होती है।

भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य और महंगाई की बिगड़ती स्थिति



T.B. यदुवंशी ननकू यादव
पत्रकार



भारत में शिक्षा और स्वास्थ्य की लागत लगातार बढ़ रही है, और महंगाई इस दबाव को और गहरा कर रही है। जुलाई 2026 में खुदरा मुद्रास्फीति 4.45% रही, जो लगातार दूसरे महीने RBI के 4% लक्ष्य से ऊपर थी, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह 4.84% और शहरी क्षेत्रों में 3.96% दर्ज की गई।

महंगाई का बढ़ता दबाव

महंगाई अब केवल रोज़मर्रा की खरीदारी तक सीमित नहीं रह गई है; इसका असर स्कूल फीस, दवाइयों, जांच और इलाज पर भी साफ दिख रहा है। जुलाई 2026 में खाद्य पदार्थों की महंगाई 5.52% तक पहुंच गई, जिससे परिवारों का मासिक बजट और अधिक दब गया।

जब भोजन, किराया, परिवहन और जरूरी सेवाएँ महंगी होती हैं, तो शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों पर होने वाला खर्च सबसे पहले प्रभावित होता है। यही कारण है कि मध्यम और निम्न आय वर्ग के परिवारों को एक ही समय में कई मोर्चों पर समझौता करना पड़ता है।

शिक्षा की बढ़ती लागत

शिक्षा आज केवल किताबों और स्कूल फीस तक सीमित नहीं है। इसमें ट्यूशन, कोचिंग, यूनिफॉर्म, कॉपी-किताबें, डिजिटल साधन और परिवहन जैसे कई खर्च जुड़े हुए हैं, जिनकी वजह से कुल बोझ बहुत बढ़ जाता है। MoSPI के आँकड़ों के अनुसार नवंबर 2025 में शिक्षा महंगाई 3.38% थी, जबकि अक्टूबर 2025 में यह 3.54% रही। यह दिखाता है कि शिक्षा की लागत लगातार ऊपर बनी हुई है और परिवारों पर दबाव कम नहीं हो रहा। मार्च 2025 में ट्यूशन और स्कूल फीस में 4.7% की वृद्धि दर्ज की गई थी, जो 12 महीनों का उच्च स्तर था। इसका सीधा असर उन परिवारों पर पड़ा जो बच्चों की पढ़ाई के लिए पहले से ही कर्ज या सीमित आय पर निर्भर थे।

स्वास्थ्य पर असर

स्वास्थ्य क्षेत्र में महंगाई का असर सबसे संवेदनशील रूप में दिखता है, क्योंकि बीमारी का खर्च टाला नहीं जा सकता। नवंबर 2025 में स्वास्थ्य महंगाई 3.60% थी, जबकि अक्टूबर 2025 में यह 3.81% रही। मार्च 2025 में एक्स-रे और ECG जैसी सेवाओं की कीमतें 15 महीने के उच्च स्तर पर पहुंच गई थीं, जिससे जांच और उपचार दोनों महंगे हुए। जब दवाइयाँ, डायग्नोस्टिक टेस्ट और अस्पताल सेवाएँ लगातार महंगी होती हैं, तब गरीब और निम्न-मध्यम वर्ग के लिए समय पर इलाज कराना मुश्किल हो जाता है।

आम परिवार की कठिनाई

इस पूरे संकट का सबसे बड़ा असर आम परिवारों की बचत और प्राथमिकताओं पर पड़ता है। पहले जो पैसा शिक्षा या स्वास्थ्य पर आराम से खर्च हो जाता था, अब वही राशि कई बार महीने के अंतिम दिनों तक पहुंचते-पहुंचते कम पड़ जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में महंगाई का असर और अधिक तीखा है, क्योंकि वहाँ आय के स्रोत सीमित हैं और स्वास्थ्य-शिक्षा की सुविधाएँ भी अक्सर दूर या कमज़ोर होती हैं। शहरी परिवारों को निजी स्कूल, कोचिंग और अस्पतालों पर ज़्यादा निर्भर रहना पड़ता है, इसलिए उनकी जेब पर भार अलग तरीके से बढ़ता है।

व्यवस्था की चुनौती

यह समस्या केवल महंगाई की नहीं, बल्कि सार्वजनिक सेवाओं की गुणवत्ता और उपलब्धता की भी है। जब सरकारी स्कूल, कॉलेज, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और अस्पताल मजबूत नहीं होते, तो जनता निजी विकल्पों की ओर जाती है, और खर्च तेजी से बढ़ता है। इससे सामाजिक असमानता और गहरी होती है, क्योंकि बेहतर शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ उन्हीं तक सीमित रह जाती हैं जो भुगतान कर सकते हैं। नीति-निर्माताओं के लिए सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वे महंगाई को नियंत्रित करने के साथ-साथ शिक्षा और स्वास्थ्य की सार्वजनिक व्यवस्था को भी मजबूत करें।

निष्कर्ष

आज भारत में शिक्षा और स्वास्थ्य सिर्फ विकास के विषय नहीं, बल्कि जीवन-यापन की बुनियादी जरूरत बन चुके हैं। यदि इन दोनों क्षेत्रों की लागत बढ़ती रही, तो मध्यम वर्ग नीचे खिसकेगा और गरीब वर्ग के लिए ऊपर उठना और कठिन हो जाएगा। महंगाई से राहत केवल आंकड़ों से नहीं, बल्कि स्कूलों, अस्पतालों, दवाइयों, जांच और सार्वजनिक सेवाओं में वास्तविक सुधार से मिलेगी। यही समय की सबसे बड़ी जरूरत है।

सत्ता, रसूख और पूंजी के बीच फंसी पत्रकारिता लोकतंत्र का कठिन दौर



T.B. यदुवंशी ननकू यादव
पत्रकार



पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है, क्योंकि उसका मूल दायित्व जनता को सही सूचना देना, सत्ता से सवाल पूछना और समाज के कमजोर वर्गों की आवाज बनना है। लेकिन मौजूदा दौर में पत्रकारिता सत्ता, राजनीतिक रसूख और बड़ी पूंजी के दबावों के बीच लगातार चुनौती का सामना कर रही है। खबर और प्रचार के बीच की रेखा कई जगह धुंधली होती जा रही है तथा जनसरोकारों की जगह बाजार और प्रभाव का दबदबा बढ़ रहा है।

पत्रकारिता का संकट

केवल समाचार कक्षों तक सीमित नहीं है। यह संकट लोकतांत्रिक व्यवस्था, नागरिक अधिकारों और सार्वजनिक संवाद से जुड़ा हुआ है। जब मीडिया स्वतंत्र होकर सवाल नहीं पूछता, तब नागरिकों को शासन, प्रशासन और संस्थाओं के कामकाज की निष्पक्ष जानकारी नहीं मिल पाती।

सत्ता का बढ़ता प्रभाव

सत्ता और पत्रकारिता का संबंध हमेशा जटिल रहा है। सरकारों को अपनी नीतियों और उपलब्धियों को जनता तक पहुंचाने के लिए मीडिया की आवश्यकता होती है, जबकि पत्रकारिता का दायित्व सत्ता के दावों की स्वतंत्र जांच करना है। समस्या तब पैदा होती है जब संवाद की जगह निकटता, सवालों की जगह प्रशंसा और जांच की जगह आधिकारिक दावों का प्रसारण प्रमुख हो जाता है।

कई बार पत्रकारों पर दबाव सीधे तौर पर दिखाई देता है। मुकदमे, गिरफ्तारी, मानहानि के नोटिस, सरकारी विज्ञापनों में कटौती, प्रेस कॉन्फ्रेंस से दूरी और संस्थागत पहुंच सीमित करना इसके विभिन्न रूप हो सकते हैं। पत्रकारों की गिरफ्तारियों और उनके खिलाफ कानून के कथित दुरुपयोग पर संपादकों के संगठनों ने समय-समय पर चिंता जताई है।

सत्ता का दबाव केवल दमन के रूप में नहीं आता। कभी-कभी सत्ता के करीब रहने से मिलने वाली सुविधाएं, विशेष पहुंच और विशेषाधिकार भी पत्रकारिता की स्वतंत्रता को प्रभावित करते हैं। जब पत्रकार सवाल पूछने के बजाय सत्ता की भाषा दोहराने लगते हैं, तब समाचार संस्थान सूचना के मंच से बदलकर प्रचार के माध्यम बन सकते हैं।

पूंजी का नियंत्रण

मीडिया संस्थानों के संचालन के लिए पूंजी आवश्यक है, लेकिन जब स्वामित्व और वित्तीय हित अत्यधिक केंद्रीकृत हो जाते हैं, तब संपादकीय स्वतंत्रता पर असर पड़ने की आशंका बढ़ जाती है। बड़े कारोबारी समूहों का मीडिया में प्रवेश, विज्ञापन पर बढ़ती निर्भरता और बाजार आधारित रेटिंग की होड़ ने समाचारों की प्राथमिकताओं को प्रभावित किया है।

मीडिया स्वामित्व के केंद्रीकरण को लेकर प्रकाशित अध्ययनों में यह चिंता सामने आई है कि हिंदी समाचार-पाठक वर्ग का बड़ा हिस्सा कुछ प्रमुख अखबार समूहों तक सीमित है। ऐसी स्थिति में विविध विचारों, स्थानीय आवाजों और वैकल्पिक दृष्टिकोणों के लिए स्थान सिकुड़ सकता है।

पूंजी का प्रभाव कई स्तरों पर दिखाई देता है

जनहित की खबरों की जगह अधिक मुनाफा देने वाली सामग्री को प्राथमिकता मिलना।

ग्रामीण, आदिवासी, श्रमिक और वंचित समुदायों की समस्याओं का सीमित कवरेज।

विज्ञापनदाताओं और कारोबारी हितों से जुड़ी खबरों पर आत्म-संयम।

टीआरपी, क्लिक और वायरल सामग्री के दबाव में गंभीर पत्रकारिता का कमजोर होना।

पत्रकारों को कम वेतन और अस्थायी रोजगार देकर उनसे अधिक काम लेना।

इसका परिणाम यह होता है कि समाचार एक सार्वजनिक सेवा के बजाय बाजार में बिकने वाला उत्पाद बन जाता है। खबर की गुणवत्ता का मूल्यांकन उसके सामाजिक प्रभाव से नहीं, बल्कि उसकी पहुंच, क्लिक और विज्ञापन क्षमता से किया जाने लगता है। रसूख और पहुंच

की राजनीति राजनीतिक और सामाजिक रसूख पत्रकारिता को प्रभावित करने वाला तीसरा बड़ा कारक है। प्रभावशाली नेताओं, अधिकारियों, उद्योगपतियों और स्थानीय दबंगों तक विशेष पहुंच हासिल करना पत्रकारों के लिए खबरों का स्रोत हो सकता है, लेकिन यही पहुंच कई बार निर्भरता में बदल जाती है।ऐसे माहौल में पत्रकार के सामने दोहरी चुनौती होती है। एक ओर उसे विश्वसनीय स्रोतों से जानकारी हासिल करनी होती है, दूसरी ओर उन्हीं स्रोतों की जांच भी करनी होती है। यदि स्रोत से संबंध बचाने के लिए सवालों को दबा दिया जाए, तो पत्रकारिता की निष्पक्षता प्रभावित होती है।

रसूख का असर स्थानीय पत्रकारिता में अधिक तीखा दिखाई देता है। जिला और तहसील स्तर पर पत्रकारों को प्रशासनिक दबाव, राजनीतिक हस्तक्षेप, विज्ञापन के असमान वितरण और सामाजिक बहिष्कार जैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है। स्थानीय पत्रकारों के पास बड़े संस्थानों जैसी कानूनी और आर्थिक सुरक्षा भी अक्सर नहीं होती। खबर और प्रचार का अंतर पत्रकारिता का सबसे महत्वपूर्ण आधार तथ्य, स्वतंत्र जांच और जनहित है। इसके विपरीत प्रचार का उद्देश्य किसी व्यक्ति, दल, संस्था या नीति की छवि बनाना होता है। जब दोनों के बीच का अंतर समाप्त होने लगता है, तब दर्शक और पाठक यह समझ नहीं पाते कि वे समाचार देख रहे हैं या किसी पक्ष का संदेश। प्रचारात्मक पत्रकारिता की कुछ प्रमुख विशेषताएं हैं—

एकतरफा बयान को खबर के रूप में प्रस्तुत करना। आरोपों की जांच किए बिना उन्हें प्रमुखता देना। असुविधाजनक तथ्यों और विरोधी पक्ष को नजरअंदाज करना।भावनात्मक भाषा और उत्तेजक शीर्षकों का इस्तेमाल। जनसमस्याओं के बजाय व्यक्तिपूजा और विवादों पर अधिक ध्यान। पत्रकारिता का काम किसी सरकार या विपक्ष का प्रचार करना नहीं, बल्कि जनता को तथ्यों के आधार पर निर्णय लेने योग्य बनाना है। प्रेस की स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं कि पत्रकार जवाबदेही से मुक्त हैं; इसका अर्थ है कि वे बिना अनुचित दबाव के सत्य की पड़ताल कर सकें। डिजिटल मीडिया की चुनौती डिजिटल मीडिया ने पत्रकारिता को नए अवसर दिए हैं। अब छोटे शहरों और गांवों से भी खबरें तुरंत राष्ट्रीय स्तर तक पहुंच सकती हैं। सोशल मीडिया ने पारंपरिक संस्थानों के एकाधिकार को चुनौती दी है और नागरिकों को अपनी बात रखने का मंच दिया है। लेकिन डिजिटल पत्रकारिता के सामने फर्जी खबर, अधूरी जानकारी, क्लिकबेट शीर्षक, बिना पुष्टि के वीडियो और अफवाहों का खतरा भी है। तेज खबर देने की होड़ में तथ्य-जांच और संदर्भ पीछे छूट जाते हैं। इससे पत्रकारिता की विश्वसनीयता को नुकसान पहुंचता है।

डिजिटल दौर में पत्रकारों के लिए कुछ बुनियादी सावधानियां जरूरी हैं—

हर सूचना का कम-से-कम दो स्वतंत्र स्रोतों से सत्यापन।

वीडियो और तस्वीरों की तारीख, स्थान तथा संदर्भ की जांच।

आरोपों में संबंधित पक्ष का आधिकारिक पक्ष शामिल करना।

सोशल मीडिया पोस्ट को स्वतः प्रमाण न मानना।

गलती होने पर स्पष्ट और प्रमुख तरीके से सुधार प्रकाशित करना।

पत्रकारिता पर खतरे का असर

जब पत्रकारिता सत्ता, पूंजी और रसूख के दबाव में आती है, तो सबसे पहले जनता का विश्वास कमजोर होता है। पाठक यह मानने लगता है कि खबरें निष्पक्ष नहीं, बल्कि किसी हित समूह के अनुसार तैयार की जा रही हैं। विश्वास का यह संकट लोकतंत्र के लिए गंभीर है, क्योंकि लोकतांत्रिक निर्णय विश्वसनीय सूचना पर आधारित होते हैं।दूसरा असर सार्वजनिक मुद्दों पर पड़ता है। बेरोजगारी, महंगाई, शिक्षा, स्वास्थ्य, किसानों की समस्याएं, श्रमिक अधिकार, पर्यावरण और स्थानीय भ्रष्टाचार जैसे मुद्दे लगातार कवरेज मांगते हैं। यदि मीडिया का ध्यान केवल राजनीतिक बयानबाजी, सनसनी और मनोरंजन पर केंद्रित हो जाए, तो वास्तविक समस्याएं राष्ट्रीय विमर्श से बाहर हो जाती हैं।तीसरा असर पत्रकारों के मनोबल पर पड़ता है। असुरक्षित रोजगार और दबावपूर्ण माहौल के कारण कई पत्रकार आत्म-सेंसरशिप अपनाने लगते हैं। वे ऐसी खबरों से बचते हैं जिनसे संस्थान, विज्ञापनदाता या प्रभावशाली व्यक्ति नाराज हो सकते हैं। रास्ता क्या है? पत्रकारिता को इस संकट से निकालने के लिए केवल पत्रकारों से नैतिकता की अपेक्षा पर्याप्त नहीं है। मीडिया संस्थानों, सरकार, न्यायपालिका, नागरिक समाज और पाठकों सभी को अपनी भूमिका निभानी होगी। मीडिया स्वामित्व और वित्तीय हितों में पारदर्शिता लाई जाए। संपादकीय विभाग को कारोबारी और राजनीतिक दबाव से स्वतंत्र बनाया जाए। पत्रकारों को सुरक्षित रोजगार, उचित वेतन और कानूनी सहायता मिले। सरकारी विज्ञापनों का वितरण स्पष्ट और निष्पक्ष नियमों के आधार पर हो। पत्रकारों के खिलाफ कार्रवाई से पहले कानून का निष्पक्ष और अनुपातिक उपयोग सुनिश्चित किया जाए। प्रेस कॉन्फ्रेंस और सार्वजनिक संवाद की परंपरा मजबूत की जाए। मीडिया संस्थान अपनी आचार संहिता और हित-संघर्ष की जानकारी सार्वजनिक करें। पाठक और दर्शक भी खबर की पुष्टि करें तथा सनसनीखेज सामग्री को बिना जांच साझा न करें। पत्रकारिता को बचाने का अर्थ किसी एक संस्था या विचारधारा का समर्थन करना नहीं, बल्कि नागरिकों के जानने के अधिकार की रक्षा करना है। सत्ता से सवाल पूछना पत्रकारिता-विरोधी गतिविधि नहीं, बल्कि उसका मूल कर्तव्य है। निष्कर्ष सत्ता, रसूख और पूंजी के बीच फंसी पत्रकारिता का संकट वास्तव में लोकतंत्र के स्वास्थ्य का संकट है। यदि खबरें सत्ता के प्रचार, पूंजी के हित और रसूखदारों की सुविधा के अनुसार तय होंगी, तो आम नागरिक की आवाज दब जाएगी।

इसके बावजूद पत्रकारिता की संभावना समाप्त नहीं हुई है। देशभर में अनेक पत्रकार और छोटे मीडिया संस्थान अब भी तथ्य, जनहित और साहस के साथ काम कर रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि पत्रकारिता अपने मूल सिद्धांत—सत्य, स्वतंत्रता, निष्पक्षता और जनसरोकार—को फिर से केंद्र में लाए। तभी मीडिया लोकतंत्र का वास्तविक प्रहरी बन सकेगा, न कि सत्ता और बाजार का केवल सूचना-वितरक

जब एक पत्रकार मुसीबत में होता है

तो पत्रकारिता शायद सही रास्ते पर होती है



T.B. यदुवंशी ननकू यादव
पत्रकार



इंदौर को भारत के सबसे स्वच्छ शहर के रूप में प्रचारित किया जाता है। यह लेबल सरकारी अभियानों, शहरी रैंकिंग और राजनीतिक भाषणों में बार-बार दोहराया जाता है। लेकिन इसी शहर में, पिछले कुछ दिनों में, सीवेज से दूषित पानी पीने के बाद कम से कम पंद्रह लोगों की मौत की खबर है। अकेले यह तथ्य ही राज्य से जवाबदेही, आत्मनिरीक्षण और तत्काल जवाब मांगता था। इसके बजाय, जो हुआ उसने समकालीन भारत में पत्रकारिता की वास्तविक स्थिति को उजागर कर दिया।

एक सार्वजनिक बातचीत में, NDTV के मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के रेजिडेंट एडिटर अनुराग द्वारी ने एक सीधा सवाल पूछा: जब नागरिक दूषित पानी पीने के बाद मर जाते हैं तो इसके लिए जिम्मेदार कौन है? यह सवाल न तो सनसनीखेज था और न ही बयानबाजी भरा। यह जनहित में था और पहले से ही हुई मौतों पर आधारित था।

जवाब डेटा, स्पष्टीकरण या पछतावे के रूप में नहीं आया, बल्कि गाली के रूप में आया। मध्य प्रदेश के एक वरिष्ठ मंत्री और इंदौर के विधायक कैलाश विजयवर्गीय ने इस मुद्दे को संबोधित करने के बजाय पत्रकार पर मौखिक हमला करना चुना। उस क्षण में, यह आदान-प्रदान एक रिपोर्टर और एक राजनेता के बीच का टकराव नहीं रहा। यह सत्ता, असुरक्षा और जांच के प्रति असहिष्णुता का एक खुला स्नैपशॉट बन गया।

द्वारी पीछे नहीं हटे। उन्होंने डटकर जवाब दिया। यही वजह है कि सोशल मीडिया के बड़े हिस्से ने उनके आचरण की प्रशंसा की और इसे "असली पत्रकारिता" कहा। लेकिन प्रशंसा, इस इकोसिस्टम में, भ्रामक है। तालियों के पीछे एक कठोर वास्तविकता छिपी है - वह सवाल पूछकर, द्वारी ने जोखिम स्वीकार कर लिया।

आज के मुख्यधारा के मीडिया माहौल में, जोखिम हमेशा गोलियों या बमों के रूप में नहीं आता। यह अक्सर राजनीतिक शत्रुता, संस्थागत दबाव, अपने ही न्यूजरूम के भीतर सूक्ष्म अलगाव, या "पहुंच" की चुपके से वापसी के रूप में आता है। एक पत्रकार जो सत्ता के लिए असुविधाजनक बन जाता है, वह उन व्यवस्थाओं के लिए भी असुविधाजनक बन

जाता है जो सत्ता के करीब रहकर जीवित रहना सीख गई हैं।यहीं पर कहानी मुख्यधारा के मीडिया के लिए ही असहज हो जाती है। कई वरिष्ठ पत्रकार, विशेष रूप से राज्य स्तर पर, सरकारों के साथ सावधानीपूर्वक बनाए गए निकटता का आनंद लेते हैं। यह निकटता दृश्यता, जानकारी, यात्रा, प्रतिष्ठा और कभी-कभी अनकहे विशेषाधिकार लाती है। अलिखित नियम सरल है: मुसीबत पैदा मत करो। ऐसे सवाल मत पूछो जो जवाबदेही के लिए मजबूर करें।

इंदौर की घटना ने ऐसे पत्रकारों को नैतिक दुविधा में डाल दिया है। सार्वजनिक रूप से द्वारी का समर्थन करना राजनीतिक प्रतिष्ठान को नाराज करने का जोखिम है। चुप रहना पत्रकारिता समुदाय के भीतर और अधिक उजागर होने का जोखिम है। यह बताने वाली बात है कि द्वारी के लिए सबसे मुखर समर्थन शक्तिशाली न्यूज़रूम के लोगों से नहीं, बल्कि स्वतंत्र डिजिटल पत्रकारों, यूट्यूबर्स और वैकल्पिक मीडिया प्लेटफार्मों से आया है - जो पहले से ही मुख्यधारा के संस्थानों के सुरक्षा जाल से बाहर काम कर रहे हैं।

यह विभाजन आकस्मिक नहीं है। यह पत्रकारिता के भीतर ही एक गहरे संकट को दर्शाता है।यह संकट केवल भारत तक सीमित नहीं है। इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स (IFJ) की 2025 की अंतिम रिपोर्ट के अनुसार, दुनिया भर में पत्रकारिता तेजी से खतरनाक होती जा रही है। केवल 2025 में ही, वैश्विक स्तर पर 128 पत्रकार और मीडिया कर्मी मारे गए, जिनमें दस महिलाएं शामिल हैं। कुल 533 पत्रकार वर्तमान में जेल में हैं। 1990 के बाद से, 3,100 से अधिक पत्रकारों ने अपनी जान गंवाई है-हर साल औसतन 90 से अधिक।गाजा, यमन, यूक्रेन, सूडान और अफ्रीका के कुछ हिस्से जैसे संघर्ष क्षेत्र रिपोर्टरों के लिए कब्रगाह बन गए हैं। पत्रकारों को अब ड्रोन से निशाना बनाया जा रहा है, मीडिया कार्यालयों के अंदर बमबारी की जा रही है, और वास्तविकता को दर्ज करने के साधारण कार्य के लिए हमला किया जा रहा है। भारत, जो अक्सर खुद को एक मजबूत लोकतंत्र के रूप में पेश करने के लिए उत्सुक रहता है, इस सूची से अनुपस्थित नहीं है। IFJ के आंकड़ों के अनुसार, 2025 में देश में चार पत्रकार मारे गए थे।

इंदौर की घटना को इसी वैश्विक पृष्ठभूमि के खिलाफ पढ़ा जाना चाहिए। यहां, हथियार मिसाइल या बंदूक नहीं था। यह अपमान, धमकी और अवैध ठहराना था। संदेश वही था: सत्ता से सवाल मत करो।

पत्रकारिता का आधुनिक दमन शायद ही कभी खुले तौर पर खुद को घोषित करता है। यह भाषा, पहुंच नियंत्रण, मुकदमों, विज्ञापन के दबाव और संस्थागत अनुपालन के माध्यम से काम करता है। एक पत्रकार को चुप कराने के लिए उसे मारने की जरूरत नहीं है। कभी-कभी एक सवाल को "बेकार" और पत्रकार को त्यागने योग्य बताना ही काफी होता है।

यही कारण है कि अनुराग द्वारी की स्थिति मायने रखती है। वह मुख्यधारा के मीडिया का हिस्सा हैं, कोई बाहरी व्यक्ति नहीं। और फिर भी, उन्होंने एक ऐसा सवाल पूछने का फैसला किया जिसने सत्ता के आराम को बाधित किया। यह विकल्प उन्हें मुख्यधारा के पत्रकारों के एक सिकुड़ते हुए समूह में रखता है जो अभी भी पत्रकारिता को एक बातचीत की व्यवस्था के बजाय एक सार्वजनिक सेवा के रूप में देखते हैं।

असहज सच्चाई यह है कि आज भारतीय पत्रकारिता में अधिकांश जोखिम लेने का काम स्वतंत्र डिजिटल पत्रकार कर रहे हैं। वे उस खालीपन को भरते हैं जो बड़े न्यूजरूम द्वारा सुरक्षा, रेटिंग या जवाबदेही पर निकटता को प्राथमिकता देने के कारण पीछे छूट गया है। यह मुख्यधारा के मीडिया को गहराई से चिंतित करना चाहिए, क्योंकि जब पत्रकारिता पीछे हटती है, तो विश्वसनीयता भी उसके पीछे चली जाती है।आज पत्रकारिता इतनी कमजोर क्यों दिखाई देती है? क्योंकि ईमानदारी की कीमत तेजी से बढ़ गई है। करियर पटरी से उतर सकते हैं। संस्थान खुद को दूर कर सकते हैं। कानूनी उत्पीड़न समय और संसाधनों को खत्म कर सकता है। और बदले में, सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं है - केवल यह ज्ञान है कि किसी ने अपना काम ईमानदारी से किया।

फिर भी इतिहास स्पष्ट है। पत्रकारिता कभी भी आरामदायक होने से जीवित नहीं रही है। यह प्रतिस्पर्धा, दबाव और अक्सर खतरे में पड़कर जीवित रहती है। जब भी पत्रकार बहुत सुरक्षित हो जाते हैं, तो सत्ता बहुत अहंकारी हो जाती है। इसलिए, जनता की भूमिका महत्वपूर्ण है। यदि नागरिक यह मानने लगते हैं कि सवाल पूछना अहंकार या उपद्रव है, तो पत्रकारिता जनसंपर्क में बदल जाती है। लेकिन अगर नागरिक यह पहचानते हैं कि एक ईमानदार सवाल पूरे भ्रष्ट सिस्टम को हिला सकता है, तो पत्रकारिता अपनी लोकतांत्रिक ताकत वापस पा लेती है।

जनता के भरोसे पर टिकी पत्रकारिता और सरकारी संरक्षण पर टिकी पत्रकारिता में अंतर है। बाद वाला सुरक्षा के लिए चुप्पी का व्यापार करता है। पहला प्रासंगिकता के बदले में भेद्यता को स्वीकार करता है।इंदौर की घटना कोई अलग-थलग झड़प नहीं है। यह एक संकेत है। एक चेतावनी। और, शायद, आशा का एक नाजुक स्रोत। जब तक ऐसे पत्रकार हैं जो जरूरी सवाल पूछने के लिए गाली खाने को तैयार हैं, तब तक पत्रकारिता मरी नहीं है।क्योंकि सच्चाई सरल और बेचैन करने वाली बनी हुई है: जब पत्रकार दबाव में होते हैं, तो इसका अक्सर मतलब होता है कि पत्रकारिता कुछ सही कर रही है।

रीवा संभाग में एक साल: आईजी गौरव राजपूत के शासन में नशा, कोरेक्स और तस्करी पर व्यापक कार्रवाई

T.B. यदुवंशी ननकू यादव
सतना मध्य प्रदेश

रीवा संभाग, जो मध्य प्रदेश के रीवा, सतना, सिंगरौली और आसपास के जिलों को कवर करता है, पिछले कुछ वर्षों में नशे और तस्करी से जुड़ी गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है। आईजी गौरव राजपूत के एक साल के कार्यकाल में संभागीय पुलिस ने नशा तस्करी, कोरेक्स (crackdown on drug peddlers and networks) और संबंधित अपराधों के खिलाफ जो नीति और संचालन अपनाए, उन्होंने स्थानीय अपराधी नेटवर्कों को क्षति पहुंचाई और सामुदायिक स्तर पर असर दिखाया। नीचे उन उपायों, परिणामों, कमजोरियों और भविष्य के सुझावों का विश्लेषण दिया जा रहा है।

कार्यदिशा और रणनीति

केंद्रित अभियान बनाम निरंतर निवारक कदम: राजपूत की कमान में पुलिस ने बड़े-छोटे 'क्लीन-अप' अभियान और अभियान-आधारित छापों को बढ़ाया। इन अभियानों में सक्रिय खुफिया नेटवर्क, राजस्व और आरटीओ डेटा का क्रॉस-चेक, और संदिग्ध वाहनों व संदिग्ध जगहों पर संयुक्त छापे शामिल रहे।

इंटेलिजेंस-आधारित ऑपरेशन: स्थानीय पुलिस थानों और साइबर/इंटेल विंग के बीच समन्वय बढ़ाकर नेटवर्क—डीलरों और उनके रसद सप्लायर्स—को निशाना बनाया गया। फोन ट्रेसिंग, नेटवर्क मैपिंग और पैटर्न एनालिसिस का उपयोग बढ़ा।

हॉटस्पॉट पॉलिसिंग: जिन इलाकों में नशे का



कारोबार अधिक था, वहां पुलिस लगातार पहरा, नाइट पेट्रोलिंग और ड्राइव-वैरिफिकेशन बढ़ाने पर मजबूर हुई।

सामुदायिक सहभागिता और जागरूकता: शैक्षिक संस्थानों, पंचायतों और नागरिक संगठनों के साथ जागरूकता शिविर, नशा मुक्ति अभियानों और हेल्पलाइन/रिपोर्टिंग तंत्र को सशक्त करने के प्रयास दिखाई दिए।

प्रमुख कार्रवाई और परिणाम (सारांश)

बड़ी सर्जरी और गिरफ्तारियाँ: एक साल में संभाग स्तर पर दर्जनों मामूली-से-मध्यम मामलों के साथ कुछ बड़े गिरोहों और तस्करों के खिलाफ संगठित कार्रवाई हुई। इन अभियानों में बड़ी मात्रा में नशीले पदार्थ, नकदी और तस्करी में प्रयुक्त वाहनों की जब्ती की गई।

वितरण चैनलों का बाधित होना: नियमित सप्लाई रूट्स और स्थानीय नेटवर्क जो शहर और कस्बों को जोड़ते थे, उनमें खलल पड़ा। कई मिड-लेवल डिस्ट्रिब्यूटर्स या पेडलरों के गिरने से सड़क-स्तर पर उपलब्धता घटने लगी।

केस दर्ज और मुकदमेबाजी: गिरफ्तारी के साथ एफआईआर दर्ज कर न्यायिक प्रक्रिया शुरू हुई; हालांकि न्यायिक देरी और जमानत पर रिहाई से कुछ मामलों में असर सीमित रहा।

सांख्यिकीय संकेत: (नोट: स्थानीय आधिकारिक सांख्यिकी पर निर्भर। यदि आप चाहें तो मैं समाचार स्रोतों और पुलिस प्रेस नोट के आधार पर निर्दिष्ट आँकड़े शामिल कर दूँगा।) कुल मिलाकर गिरफ्तारी और बरामदगी के आंकड़े पिछले साल की तुलना में बढ़े, जबकि कुछ क्षेत्रों में लगातार गिरावट दर्ज हुई।

रणनीतिक नवाचार व व्यवहारिक बदलाव

मल्टी-एजेंसी सहयोग: नशा तस्करी अक्सर सीमापार और बहु-डिस्ट्रिक्ट नेटवर्क से जुड़ी होती है; राजपूत की पहल में अन्य जिलों और राज्य एजेंसियों के साथ तालमेल बढ़ाना एक निर्णायक कदम रहा।

डेटा-ड्रिवन पॉलिसिंग: अपराध के पैटर्न

एनालिसिस पर बल देकर पुलिस ने प्रायोरिटी ज़ोन निर्धारित किए और सीमित संसाधनों को लक्षित रखा।

फोकस ऑन इन्फ्रास्ट्रक्चर ऑफ तस्करी: बस स्टैंड, लॉज, रेस्टोरेंट, और ट्रैवल रूट्स पर निगरानी तेज की गई। परिवहन नेटवर्क पर चेक पोस्ट और एक्स्ट्रा वेरिफिकेशन बढ़ाए गए।

साधारण से लेकर उन्नत तक की छापेमारी तकनीकें: ड्रोन या स्पेशल रिज़र्व के उपयोग का जिक्र स्थानीय प्रेस में रहा है—यदि आप चाहें तो मैं प्रमाणों के साथ जोड़ दूँगा।

सामुदायिक और सामाजिक असर

शहरी और ग्रामीण दोनों स्तरों पर नशे की उपलब्धता पर असर: कस्बों में सप्लाई बाधित होने से बाजार दरें बदल सकती हैं और छोटे समय के लिए 'सूखी' अवधि देखने को मिलती है।

सामाजिक जागरूकता व रिपोर्टिंग में वृद्धि: पुलिस की सक्रियता ने नागरिकों को मामलों की सूचना देने के लिये प्रेरित किया, जिससे अनौपचारिक निवारक तंत्र सुदृढ़ हुए।

शहरी-गरीबी और रिकवरी सपोर्ट: नशा छोड़ने वाले लोगों के लिए रिहैब एवं सामाजिक सेवाओं की कमी बनी रही; गिरफ्तारी के साथ पुनर्वास पर पर्याप्त ध्यान न होना एक नकारात्मक पहलू रहा।

चुनौतियाँ और सीमाएँ

न्यायिक देरी व जमानत प्रथा: कई बार तस्कर जमानत पर रिहा हो जाते हैं, जो दीर्घकालिक रुकावट में बाधा बनता है।

इनसाइडर कनेक्शन्स और करप्शन का खतरा: स्थानीय स्तर पर मिलीभगत या जानकारी लीक होने की संभावना कार्रवाई के प्रभाव को घटाती है।

सीमित पुनर्वास ढाँचा: पकड़े गए उपभोक्ता/डीलर यदि पुनर्वास नहीं होते तो पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति बनी रहती है।

क्रॉस-स्टेट सप्लाई और सीमा-रूट: बाहरी स्रोत अभी भी मौजूद हैं; संभागीय कार्रवाइयाँ अकेले समता नहीं ला सकतीं—राज्य और क्षेत्रीय तालमेल जरूरी है।

मीडिया-रेटेड दबाव व ऑपरेशन की सस्टेनेबिलिटी: लगातार ऑपरेशन की लागत और मानव संसाधन का दबाव समय के साथ चुनौती बनता है।

आलोचनाएँ और संभावित विवाद

सख्ती बनाम मानवाधिकार: सख्त छापों और गिरफ्तारी के दौरान लोगों के अधिकारों के संरक्षण के मुद्दे उठ सकते हैं; कहीं-कहीं बिना उचित प्रक्रिया के कार्यवाही के आरोप लगते रहे हैं।

फोकस का असंतुलन: कुछ आलोचक कहते हैं कि केवल सख्ता पर जोर देने से जड़ तक नहीं पहुंचा जा सकता—समृद्धि के मूल कारणों (रोज़गार, शिक्षा, स्वास्थ्य) पर भी ध्यान चाहिए।

पारदर्शिता और आंकड़ों की उपलब्धता: प्रभाव के तटस्थ आँकड़ों की कमी से दीर्घकालिक मूल्यांकन कठिन होता है।

केस स्टडी हाइलाइट्स (सारांशात्मक उदाहरण)

केस A (काल्पनिक सार): एक मिड-लेवल सिंडिकेट को खंगाला गया जिसमें प्रमुख सप्लायर को गिरफ्तार कर 30 किलोग्राम विदेशी या स्थानीय नशीला पदार्थ बरामद हुआ; नेटवर्क की कड़ी तोड़ने के लिये पाँच जिलों में समन्वित छापे हुए और कई वाहनों के कागजात जब्त किए गए।

केस B (काल्पनिक सार): कॉलेज कैम्पस के आस-पास छोटे नशा पेडलरों का गिरोह पकड़ा गया; प्रशासन और विद्यालयों के साथ मिलकर जागरूकता और पद्धति बदली गई।

(नोट: यदि आप असली मीडिया रिपोर्टेड मामलों के विशिष्ट नाम, तिथियाँ और आँकड़े देंगे, तो मैं इन्हें सटीक रूप में शामिल कर दूँगा।)

नीतिगत सुझाव और अगले कदम

न्यायिक त्वरकता: विशेष एनडीपीएस/नशा मामलों के लिये फास्ट-ट्रैक कक्ष या समर्पित प्रोक्यूरमेंट को बढ़ावा दें ताकि जमानत के दुष्परिणाम कम हों।

पुनर्वास और पुनर्संयोजन केंद्र: गिरफ्तारी के साथ-साथ अनिवार्य/वैकल्पिक रिहैब मॉडल अपनाकर पुनरावृत्ति को रोकें; स्थानीय NGOs और स्वास्थ्य विभाग से साझेदारी जरूरी है।

पारदर्शिता और वार्षिक ऑडिट: अभियानों का सार्वजनिक-स्तर पर संक्षेप और बरामदगी/गिरफ्तारी के आँकड़ों का प्रकाशन करें ताकि प्रभाव के संकेत स्पष्ट हों।

लाइफलाइन और कॉल-टू-एक्शन: स्थानीय हेल्पलाइन, स्कूल-आधारित निगरानी और पंचायत-स्तरीय रिपोर्टिंग मेकैनिज्म को मजबूत करें।

क्षेत्रीय समन्वय बढ़ाएँ: पड़ोसी जिलों और राज्यों के साथ सूचना-एक्सचेंज प्रणाली सशक्त करें, बॉर्डर चेक-पोस्ट पर समन्वित छापे नियोजित करें।

सोशल-इकोनॉमिक इंटरवेंशन्स: अल्टरनेटिव रोज़गार, कौशल प्रशिक्षण और शिक्षा कार्यक्रमों में निवेश बढ़ाने से दीर्घकालिक जड़ें समाप्त हो सकती हैं।

निष्कर्ष (संक्षेप)

आईजी गौरव राजपूत के एक साल के कार्यकाल में रीवा संभाग में नशा और तस्करी के खिलाफ जिस तरह के लक्ष्य-आधारित, इंटेलिजेंस-ड्रिवन ऑपरेशन हुए—they ने अपराधी नेटवर्कों पर असर डाला और कई हॉटस्पॉट्स की आपूर्ति-श्रृंखला बाधित की। हालाँकि दीर्घकालिक स्थायी सफलता के लिए न्यायिक प्रक्रिया की तेज़ी, पुनर्वास ढाँचे, क्षेत्रीय समन्वय और सामाजिक-आर्थिक नीतियों का एक साथ क्रियान्वयन आवश्यक है। यदि ये उपाय लगातार और पारदर्शी तरीके से जारी रहे, तो संभाग में नशे की समस्या में महत्त्वपूर्ण कमी आ सकती है।

हाशिए की आवाज़ या सत्ता की रणनीति?

दबे-कुचले वर्गों की राजनीति: वादों से अधिकार तक का अधूरा सफर



T.B. आरपी यादव
सह सम्पादक

आज़ादी के सात दशक से अधिक समय बाद भी देश में सामाजिक न्याय का प्रश्न पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। संविधान ने समानता, आरक्षण और सामाजिक सुरक्षा का रास्ता दिखाया, लेकिन ज़मीनी स्तर पर अनेक वंचित समुदाय अब भी शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और न्याय जैसी मूलभूत सुविधाओं तक समान पहुँच की चुनौती का सामना करते हैं। हर चुनाव में ये वर्ग राजनीतिक विमर्श के केंद्र में दिखाई देते हैं, लेकिन चुनाव समाप्त होते ही उनके मुद्दे अक्सर पीछे छूट जाते हैं।

चुनाव में सबसे बड़ा मुद्दा, शासन में सबसे बड़ी उपेक्षा?

हर राजनीतिक दल सामाजिक न्याय, गरीब कल्याण और पिछड़े वर्गों के उत्थान की बात करता है। घोषणापत्रों में अनेक वादे किए जाते हैं, लेकिन जनता का सवाल यह है कि इनमें से कितने वादे समयबद्ध तरीके से पूरे होते हैं। कई योजनाओं का लाभ लाखों लोगों तक पहुँचा है, वहीं कई स्थानों पर क्रियान्वयन, पारदर्शिता और जवाबदेही को लेकर सवाल भी उठते रहे हैं।

आरक्षण से आगे की चुनौती

आरक्षण सामाजिक न्याय का एक महत्वपूर्ण साधन है, लेकिन केवल आरक्षण से सभी समस्याओं का समाधान नहीं होता। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, कौशल विकास, स्वास्थ्य सेवाएँ, स्वरोजगार, कृषि और स्थानीय उद्योगों के विकास के बिना सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण अधूरा रह जाता है।

विकास की तस्वीर: दावे और ज़मीनी हकीकत

सरकारें सड़क, बिजली, आवास, शौचालय, पेयजल और डिजिटल सेवाओं में प्रगति के दावे करती हैं। दूसरी ओर कई क्षेत्रों में बेरोज़गारी, शिक्षा की गुणवत्ता, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और भ्रष्टाचार जैसे मुद्दों पर नागरिक असंतोष भी देखने को मिलता है। वास्तविक तस्वीर क्षेत्र-दर-क्षेत्र अलग हो सकती है, इसलिए विकास का मूल्यांकन आँकड़ों के साथ-साथ ज़मीनी अनुभवों से भी होना चाहिए।

युवाओं का बदलता राजनीतिक दृष्टिकोण

आज का युवा केवल जातीय पहचान के आधार पर राजनीति नहीं देखना चाहता। रोजगार, प्रतियोगी परीक्षाओं की निष्पक्षता, शिक्षा की गुणवत्ता, डिजिटल अवसर और पारदर्शी प्रशासन जैसे मुद्दे उसकी प्राथमिकताओं में शामिल हैं। यही कारण है कि युवाओं के सवाल चुनावी बहस में अधिक प्रमुख होते जा रहे हैं।



लोकतंत्र में जवाबदेही की कसौटी

लोकतंत्र में सरकार की सफलता केवल घोषणाओं से नहीं, बल्कि इस बात से आँकी जाती है कि योजनाओं का लाभ अंतिम व्यक्ति तक कितना पहुँचा।

साथ ही विपक्ष की भूमिका केवल आलोचना तक सीमित नहीं होनी चाहिए; उसे रचनात्मक सुझाव और प्रभावी निगरानी भी करनी चाहिए। लोकतंत्र तभी मजबूत होता है जब सत्ता और विपक्ष दोनों जनता के प्रति जवाबदेह रहें।

क्या बदलना होगा?

योजनाओं के क्रियान्वयन में अधिक पारदर्शिता।

शिक्षा और रोजगार पर दीर्घकालिक निवेश।

स्थानीय निकायों और पंचायतों को अधिक अधिकार।

शिकायत निवारण व्यवस्था को तेज़ और प्रभावी बनाना।

भ्रष्टाचार और भेदभाव के मामलों में त्वरित कार्रवाई।

वंचित समुदायों की वास्तविक भागीदारी सुनिश्चित करना।

सारांश-दबे-कुचले वर्गों का विकास केवल चुनावी नारे का विषय नहीं होना चाहिए। किसी भी लोकतंत्र की मजबूती इस बात से तय होती है कि समाज का सबसे कमजोर नागरिक भी सम्मान, अवसर और न्याय के साथ जीवन जी सके। राजनीतिक दल बदल सकते हैं, सरकारें बदल सकती हैं, लेकिन सामाजिक न्याय और समान अवसर की प्रतिबद्धता लोकतंत्र का स्थायी आधार बनी रहनी चाहिए।



(यह एक विश्लेषणात्मक फीचर लेख है। इसका उद्देश्य किसी राजनीतिक दल या सरकार के पक्ष या विपक्ष में प्रचार करना नहीं, बल्कि सार्वजनिक नीति, शासन और सामाजिक न्याय के मुद्दों पर संतुलित विमर्श प्रस्तुत करना है।)

नेता जी का विकास
भाषण में तेज, जमीन पर स्लो!

T.B. तेजसबिंदु न्यूज़ नेटवर्क

चुनाव आते ही जनता याद आती है। वादों की बारिश होती है सड़क, रोजगार, शिक्षा और विकास के बड़े-बड़े दावे। चुनाव खत्म होते ही जनता फिर उसी सवाल के साथ खड़ी रह जाती है "काम कब होगा?" सरकारी कागजों में सड़क बन जाती है, उद्घाटन हो जाता है और विकास की तस्वीर भी चमक जाती है। जमीन पर पहुंचिए तो कभी सड़क गड्ढे में मिलती है, कभी नाली में पानी और कभी स्कूल में शिक्षक का इंतजार।

लेकिन दोष सिर्फ नेताओं का भी नहीं। हम ईमानदार व्यवस्था चाहते हैं, मगर अपना काम जल्दी कराने के लिए नियमों को दरकिनार करने से नहीं हिचकते। साफ शहर चाहते हैं, लेकिन कूड़ा सड़क पर फेंक देते हैं। चुनाव में विकास की बात करते हैं, फिर जाति, रिश्तेदारी





और निजी फायदे की गणित में उलझ जाते हैं। सोशल मीडिया ने हर हाथ में कैमरा और हर व्यक्ति को "चैनल" बना दिया है। वायरल खबर सच हो, यह जरूरी नहीं; लेकिन सच खबर को वायरल होना चाहिए।

असली सवाल

सरकार से सवाल जरूरी है, लेकिन समाज को भी आईना देखना होगा।

लोकतंत्र में सिर्फ यह पूछना काफी नहीं कि नेता कैसे हैं यह भी पूछना होगा कि हम नागरिक कैसे हैं?

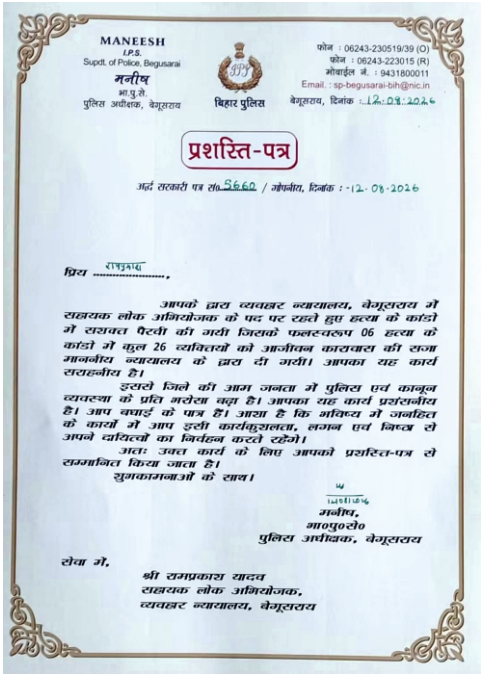
बेगूसराय के न्याय इतिहास में एक नाम : रामप्रकाश यादव

जब पैरवी बनी सजा, और सजा बनी जनता के भरोसे की वजह

T.B. प्रीत कुमार यादव (R.P. YADAV)
सह सम्पादक

अक्सर पुलिस और अभियोजन को लेकर सवाल उठते हैं, लेकिन कभी-कभी एक सशक्त पैरवी पूरे जिले में कानून के प्रति विश्वास को फिर से जगा देती है। ऐसा ही एक उदाहरण बेगूसराय व्यवहार न्यायालय से सामने आया, जहाँ एक सहायक लोक अभियोजक की दलीलों ने हत्यारों को सलाखों के पीछे पहुँचा दिया। बात है 12 अगस्त 2016 की। बेगूसराय के तत्कालीन पुलिस अधीक्षक मनीष कुमार, भा.पु.से. ने अपने अर्द्ध सरकारी पत्र संख्या 2662/गोपनीय के द्वारा व्यवहार न्यायालय, बेगूसराय में पदस्थापित सहायक लोक अभियोजक श्री रामप्रकाश यादव को प्रशस्ति-पत्र से सम्मानित किया।

क्या था मामला?



MANEESH
I.P.S.
Supdt. of Police, Begusarai
मनीष
भा.पु.से.
पुलिस अधीक्षक, बेगूसराय

बिहार पुलिस

फोन : 06243-230519/39 (O)
फोन : 06243-223015 (R)
मोबाईल नं. : 9431800011
Email. : sp-begusarai-bih@nic.in
बेगूसराय, दिनांक :-12-08-2026

प्रशस्ति-पत्र

अर्द्ध सरकारी पत्र सं॰ 2662 / गोपनीय, दिनांक :-12-08-2026

प्रिय .....,

आपको व्यवहार न्यायालय, बेगूसराय में सहायक लोक अभियोजक के पद पर रहते हुए हत्या के कांडों में सशक्त पैरवी की गयी जिसके फलस्वरूप 06 हत्या के कांडो में कुल 26 व्यक्तियों को आजीवन कारावास की सजा माननीय न्यायालय के द्वारा दी गयी। आपका यह कार्य सराहनीय है।

इससे जिले की आम जनता में पुलिस एवं कानून व्यवस्था के प्रति भरोसा बढ़ा है। आपका यह कार्य प्रशंसनीय है। आप बधाई के पात्र हैं। आशा है कि भविष्य में जनहित के कार्यों में आप इसी कार्यकुशलता, लगन एवं निष्ठा से अपने दायित्वों का निर्वहन करते रहेंगे।

अतः उक्त कार्य के लिए आपको प्रशस्ति-पत्र से सम्मानित किया जाता है।

शुभकामनाओं के साथ।

मनीष,
भा॰पु॰से॰
पुलिस अधीक्षक, बेगूसराय

सेवा में,
श्री रामप्रकाश यादव
सहायक लोक अभियोजक,
व्यवहार न्यायालय, बेगूसराय

प्रशस्ति-पत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि श्री यादव ने सहायक लोक अभियोजक के पद पर रहते हुए हत्या के जघन्य कांडों में अत्यंत सशक्त और प्रभावी पैरवी की। उनकी तर्कपूर्ण बहस, गवाहों के सटीक परीक्षण और साक्ष्यों के कुशल प्रस्तुतीकरण के फलस्वरूप माननीय न्यायालय ने एक नहीं, बल्कि 06 अलग-अलग हत्या कांडों में कुल 26 अभियुक्तों को आजीवन कारावास की सजा सुनाई।

यह उपलब्धि सामान्य नहीं थी। एक साथ छह हत्या कांडों में दो दर्जन से अधिक अपराधियों को सजा दिलाना अभियोजन की बड़ी सफलता मानी गई।



एसपी ने क्या लिखा?

अपने प्रशस्ति-पत्र में एसपी मनीष ने लिखा है -

"आपके द्वारा की गई सशक्त पैरवी के फलस्वरूप 06 हत्या के कांडों में कुल 26 व्यक्तियों को आजीवन कारावास की सजा माननीय न्यायालय के द्वारा दी गयी। आपका यह कार्य सराहनीय है। इससे जिले की आम जनता में पुलिस एवं कानून व्यवस्था के प्रति भरोसा बढ़ा है। आपका यह कार्य प्रशंसनीय है। आप बधाई के पात्र हैं।"उन्होंने आगे आशा व्यक्त की कि श्री यादव भविष्य में भी इसी कार्यकुशलता, लगन एवं निष्ठा से जनहित में अपने दायित्वों का निर्वहन करते रहेंगे।

क्यों है यह सम्मान खास?

आमतौर पर पुलिस की जांच को ही सफलता का श्रेय मिलता है, लेकिन सच्चाई यह है कि बिना सशक्त पैरवी के बड़े से बड़ा केस भी अदालत में टिक नहीं पाता। श्री रामप्रकाश यादव का यह सम्मान इस बात का प्रतीक है कि जब पुलिस की जांच और अभियोजन की पैरवी एक साथ मिलती है, तो न्याय न केवल होता है, बल्कि होता हुआ दिखता भी है।

यह प्रशस्ति-पत्र आज भी यह बताता है कि कानून की किताबों में सिर्फ धाराएं नहीं, बल्कि एक आम आदमी का भरोसा भी टिका होता है।

बेगूसराय कोर्ट में जज का फूटा गुस्सा

5 साल बाद आई इंजुरी रिपोर्ट, डॉक्टर और दरोगा से पूछा - ये कैसी जांच है?



T.B. प्रीत कुमार यादव (R.P. YADAV)
सह सम्पादक

बेगूसराय सिविल कोर्ट के एक कोर्ट रूम में उस वक्त सन्नाटा पसर गया, जब माननीय न्यायाधीश ने एक केस की फाइल देखते ही तीखे शब्दों में कहा - "पांच साल तक आपको इंजुरी रिपोर्ट याद नहीं आई?" मामला है सिंघौल थाना कांड संख्या 39/2021 का, जिसकी सुनवाई आजकल बेगूसराय कोर्ट में चर्चा का विषय बनी हुई है।

क्या है पूरा मामला?

साल 2021 में दर्ज हुए इस केस में जख्मी की मेडिकल जांच की इंजुरी रिपोर्ट 5 साल बाद, यानी 2026 में कोर्ट में दाखिल की गई। अदालत ने इसे गंभीर लापरवाही मानते हुए कड़ी टिप्पणी की है। जज साहब ने अपने आदेश में साफ लिखा है कि इतने संवेदनशील मामले में इतनी देरी सिर्फ लापरवाही नहीं, बल्कि न्याय की प्रक्रिया में बाधा है। डॉक्टर और जांच अधिकारी पर गिरी गाज कोर्ट ने इस लापरवाही को बर्दाश्त नहीं किया और सीधे जांच अधिकारी और संबंधित डॉक्टर को शोकॉज नोटिस जारी कर दिया है। कोर्ट ने दोनों से पूछा है कि - 1. आखिर 5 साल तक इंजुरी रिपोर्ट क्यों नहीं दी गई? 2. क्या जानबूझकर केस को कमजोर करने की कोशिश की गई? 3. इसका जवाब जल्द से जल्द कोर्ट में दाखिल किया जाए। अदालत ने टिप्पणी की है कि "करतब तो डॉक्टर नहीं, जांच अधिकारी और डॉक्टर में मिलीभगत" जैसी स्थिति लगती है, जिससे केस की निष्पक्षता पर सवाल उठता है!

सिस्टम का आईना यह मामला सिर्फ एक इंजुरी रिपोर्ट का नहीं है। यह हमारे सिस्टम का आईना है। एक गरीब आदमी 5 साल से न्याय के लिए कोर्ट के चक्कर लगा रहा है और कागज का एक टुकड़ा 5 साल तक किसी अलमारी में धूल खाता रहा। बेगूसराय कोर्ट की इस कड़ी टिप्पणी ने एक बार फिर यह सवाल खड़ा कर दिया है कि क्या हमारी जांच व्यवस्था पीड़ित को न्याय दिलाने के लिए बनी है या फिर फाइलों में उलझाने के लिए? अब सबकी निगाहें इस बात पर टिकी हैं कि शोकॉज के जवाब में डॉक्टर और जांच अधिकारी क्या सफाई।

464 वोटों की हार से वापसी तक अवधेश कुमार राय की संघर्षगाथा

गरीबों की आवाज से विधानसभा तक पहुंचने वाले नेता की कहानी, जिसने हार को अंत नहीं बल्कि नई शुरुआत माना

T.B. प्रीत कुमार यादव (R.P. YADAV)
सह सम्पादक



बिहार की मिट्टी में एक अलग ही किस्म की गंध होती है—संघर्ष की, सादगी की, और जिद की। इसी मिट्टी से उठे एक ऐसे किरदार की कहानी है, जिसका नाम है अवधेश कुमार राय।संघर्ष से शुरुआत हुई साल था लगभग 1952। एक साधारण परिवार में जन्मे अवधेश कुमार राय ने बचपन से ही गरीबी, असमानता और अन्याय को बहुत करीब से देखा। गाँव की पगडंडियों पर चलते-चलते उनके भीतर एक सवाल हमेशा उठता—"क्या गरीब हमेशा ऐसे ही जीने को मजबूर रहेंगे?"यही सवाल धीरे-धीरे उनके जीवन का उद्देश्य बन गया।राजनीति में कदम और पहचान बनती गई समय बदला, और उन्होंने जुड़ाव किया भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से—एक ऐसी विचारधारा से, जो गरीबों और मजदूरों की आवाज बनती है।1990 से 2000 तक, बछवारा विधानसभा क्षेत्र ने उन्हें अपना प्रतिनिधि चुना विधायक के रुप में।

यह सिर्फ जीत नहीं थी, बल्कि जनता का विश्वास था—एक ऐसे नेता पर, जो उनके बीच का ही था।लेकिन राजनीति का रास्ता कभी सीधा नहीं होता...हार जो जीत की नींव बनी साल 2000 का चुनाव आया। मुकाबला कड़ा था। नतीजा आया—सिर्फ 464 वोटों से हार।कई लोग टूट जाते, लेकिन अवधेश कुमार राय नहीं।उन्होंने इसे अंत नहीं, बल्कि एक नई शुरुआत माना।संघर्ष जारी रहा संघर्ष ही बल होता है साल 2005 के दोनों चुनावों में वे दूसरे स्थान पर रहे। हर हार के बाद वे और मजबूती से जनता के बीच लौटे गाँव-गाँव, खेत-खलिहान, मजदूरों की चौपाल, गरीबों के आँगन...लोग कहते थे "नेता नहीं, अपना आदमी है ये।"वापसी और वो भी दमदार से 2010 में, संयुक्त वाम मोर्चे के समर्थन से उन्होंने बछवारा सीट फिर से जीत ली।और उस समय वे पूरे बिहार में एकमात्र CPI विधायक बने।यह सिर्फ व्यक्तिगत जीत नहीं थी यह विचारधारा की जीत थी, संघर्ष की जीत थी।आज का दौर यह है कि बेगूसराय जिला का मजबूत चेहरासमय के साथ उनकी भूमिका और मजबूत होती गई।आज वे लगातार दूसरी बार जिला सचिव के पद पर हैं।उनकी पहचान सिर्फ एक नेता की नहीं, बल्कि गरीबों के हमदर्द की,संघर्ष के सिपाही की,और "संघर्ष का मसीहा की"के रूप में है।कोई भी मामला हो गरीबों का हक, मजदूरों की लड़ाई, या अन्याय के खिलाफ आवाज अवधेश कुमार राय हमेशा सबसे आगे खड़े मिलते हैं।उनकी असली सबसे बड़ी ताकत है उनकी भाषा और लोगों से जुड़ाव।वे भाषण नहीं देते—दिल से बात करते हैं।

वे राजनीति नहीं करते लड़ाई लड़ते हैं।एक नेता नहीं, एक कहानी जो 5 अप्रैल 2024 को मटिहानी, बेगूसराय की रैली में जब वे मंच पर खड़े थे, तो सिर्फ एक नेता नहीं बोल रहा था बल्कि वो इंसान बोल रहा था जिसने अपनी पूरी जिंदगी गरीबों के लिए समर्पित कर दी।अंत में... वही बात अवधेश कुमार राय की संघर्ष कहानी हमें ये सिखाती है हार मायने नहीं रखती, अगर इरादे जिंदा हों।नेता वो नहीं जो कुर्सी पर बैठे, बल्कि वो है जो लोगों के दिल में रहे।

शक्कर के चक्कर में रूठा आम आदमी

चीनी-तेल-गैस की बढ़ती कीमतें घर का बजट कर रहीं चौपट

T.B. तेजसबिंदु न्यूज नेटवर्क



सतना यदुवंशी ननकू यादव देश भर में महंगाई ने आम परिवारों की रोजमर्रा की जिंदगी को प्रभावित करना शुरू कर दिया है। हालिया शिकायतों के अनुसार चीनी की किलों की कीमतें कुछ जगहों पर करीब ₹65–70 पहुंच गई हैं, जबकि पारंपरिक तौर पर यह लगभग ₹40 प्रति किलो मिलती थी। इसी तरह रसोई गैस, खाने का तेल और अन्य आवश्यक वस्तुओं की बढ़ती कीमतों ने मध्यमवर्गीय और कम आय वाले परिवारों के घरेलू बजट पर भारी दबाव डाल दिया है।

क्यों बढ़ रही चीनी की कीमतें

गन्ने का बढ़ता इस्तेमाल एथेनॉल उत्पादन के लिए: विशेषज्ञों का कहना है कि एथेनॉल ब्लेंडिंग और ऊर्जा जरूरतों के चलते गन्ने का एक बड़ा हिस्सा एथेनॉल निर्माण के लिये जा रहा है, जिससे चीनी के लिए उपलब्ध कच्चा माल कम हो सकता है।

आपूर्ति-संगठन और मूल्य निर्धारण: मिलिंग क्षमता, स्टॉक समायोजन और आवक में व्यवधान जैसी कारक भी कीमतों को प्रभावित कर सकती हैं।

मांग-आधारित वृद्धि: त्योहारों और मांग वृद्धि के समय कीमतें अस्थायी रूप से उछल सकती हैं।

महंगाई का व्यापक प्रभाव

घरेलू खर्च बढ़ा: चाय की प्याली, जो पहले अक्सर ₹5 पर मिलती थी, कई स्थानों पर अब ₹10 तक पहुंच चुकी है, जिससे छोटी-छोटी घरेलू खरीदारी पर भी असर पड़ा है।

बजट फट रहे हैं: खाद्य तेल, गैस सिलिंडर और अन्य रोजमर्रा की वस्तुओं के दाम बढ़ने से मध्यम और निम्न आय वाले परिवारों के बजट बिगड़ रहे हैं; बचत और उपभोग पर असर पड़ रहा है। बहु-वर्गीय असर: किसान, विद्यार्थी, नौकरीपेशा और छोटे व्यापारियों—हर वर्ग महंगाई के दबाव का सामना कर रहा है।

सरकार और नीति की भूमिका

आर्थिक विश्लेषकों और उपभोक्ता समूहों का कहना है कि सरकार को कीमतों में वृद्धि के कारणों को पारदर्शी ढंग से जनता के सामने रखना चाहिए। विशेष रूप से:

क्या एथेनॉल उत्पादन के प्रोत्साहन ने चीनी की घरेलू उपलब्धता पर नकारात्मक प्रभाव डाला है? क्या आपूर्ति श्रृंखला और भंडारण नीतियों में सुधार की आवश्यकता है?

क्या मृत्युदर रोकने और गरीब परिवारों को राहत देने के लिये लक्ष्यित समर्थन (सब्सिडी/राशन) बढ़ाने के कदम उठाये जाने चाहिए?

आर्थिक नीतिगत विकल्प

एथेनॉल उत्पादन और चीनी आपूर्ति के बीच संतुलन बनाने के लिये समन्वित कृषि-ऊर्जा नीति की आवश्यकता। खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में मध्यम अवधि के स्टॉक और कीमत नियंत्रण के लिये नियामकीय कदम। कमजोर वर्गों के लिये तात्कालिक राहत पैकेज—राशन, सब्सिडी या कीमती वस्तुओं पर अस्थायी कर राहत। जनता की आशंका और आगामी दबाव

चुनावी दावे और विकास के दावे के बीच आम आदमी का सवाल साफ है—भोजन-जलन की नजर से राहत कब मिलेगी? विपक्ष और उपभोक्ता संगठन बढ़ती कीमतों पर सरकार से

सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र
लटेरा खुनियांव
सिद्धार्थनगर

सुखी समाज
स्वस्थ समाज



15 अगस्त
स्वतंत्रता दिवस
की हार्दिक शुभकामनाएं

आइए, मिलकर
स्वस्थ भारत
और समृद्ध भारत
का संकल्प लें।



स्वस्थ रहेंगे तो, आगे बढ़ेंगे

शिवम सिंह, चिकित्सा अधीक्षक
जागृति पटेल, स्टाफ नर्स
विनोद चौधरी, फार्मासिस्ट
राजेश चौधरी, डेंटल टेक्नीशियन

गीता देवी, ए.एन.एम.
शिवकुमारी, ए.एन.एम.
अर्चना देवी, ए.एन.एम.
मिनाक्षी देवी, ए.एन.एम.

अंबिका देवी, ए.एन.एम.
प्रमोद कुमार, वार्ड बॉय
महेंद्र कुमार, वार्ड बॉय

पत्रकार एकता फोरम

एकता हमारी पहचान, अधिकार हमारा अभियान



पत्रकार एकता फोरम के
संस्थापक सह राष्ट्रीय अध्यक्ष
डॉ तेजस यादव

98385 95489

पत्रकार एकता फोरम

पत्रकारिता
एक मिशन है,
हमारा समर्पण
समाज के नाम है।



पत्रकार एकता फोरम के
राष्ट्रीय संयोजक
प्रीत कुमार यादव
(आरपी यादव)

70619 01679

हमारा उद्देश्य

- पत्रकारों की एकता और सुरक्षा
- अधिकारों के लिए सशक्त आवाज
- निष्पक्ष पत्रकारिता को बढ़ावा
- सहयोग, सम्मान और विश्वास

"आइए... मिलकर बनाएं पत्रकारों का मजबूत परिवार।"

सशक्त पत्रकार
सशक्त समाज
सशक्त राष्ट्र

☆ जुड़ें ☆ संगठित हों ☆ सशक्त बनें ☆

पत्रकार एकता फोरम से जुड़ें
और बदलाव की आवाज़ बनें।

कार्यालय

251 ग्रा० लटेरा पो०-धोरहरा डुमरियागंज,
सिद्धार्थनगर उ०प्र०-272189